In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

GOODWILL INDIA

REDIT

CASH BOOK for ....

Receipt & Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

॥ श्रीः ॥

वनौषधि चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN BOTANYS & HERBS)

(दसवाँ भाग)

लेखक—

श्रीचन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्भा विश्वभारती
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस

बनारस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सम्मेलन

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१६१

॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAED[illegible] INDIAN BOTANIES & HERBS)

(दसवाँ भाग)

[संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण]

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

१९६८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : चतुर्थ, वि० सं० २०२५
मूल्य : सम्पूर्ण १–१० भाग रु० ४०–००
प्रत्येक भाग रु० ५–००

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office
P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (INDIA)
1968
Phone : 3145

LX
N68.10

000007

प्रधान शाखा :
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी–१
फोन : ३०७६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

विषय-सूची (१)

(हिन्दी नाम)

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
सहजना कड़वा	१	सिरन	१३	सोनापाती	३७	हड़ताल	५७
सहसा	,,	सिन्दूर	,,	सोनवल्ली	३८	हलदी	५८
सरपानो चारो	,,	सिराल	,,	सोयाबीन	,,	हस्तीशुण्डी	६१
सद्दाब	२	सीताफल	१४	सोमबलखम	४१	हस्तीकन्द	६२
सागवान	३	सीसा	१५	सोमवल्ली	,,	हंसपदी	,,
साटर	४	सुरिन्द	१७	सिंगड़ियो	४३	हंसराज	,,
सादड़ा	,,	सुपारी	१८	सोडा	४४	हिंगोट	६३
स्याहचोब	,,	सुहागा	२०	सोरा	,,	हिरनपदी	६४
सालम मिश्री	५	सुरिंजान	२२	सोंठ	४५	हिरूसियाह	,,
सालम लाहौरी	६	सुरमा	,,	सोया	४७	हींग	,,
सालपन	,,	सूरजमुखी	२३	सोसन	४८	हींगड़ा	६६
सालपन बड़ा	७	सूरजकान्ति	,,	सौंफ	,,	हिंगुपत्री	,,
सावनी	,,	सूर्य्यकिरण	२४	हब एल घर	४९	हलकुसा	,,
सामाघास	,,	सर्पबूटी (मीन)	२९	हथजोड़ी	,,	हीराबोल	६७
सिगरफ	,,	साम्भर का सींग	३०	हलियून	,,	हीरादखन	,,
सिघाड़ा	८	सूर्य्यभिड़ा	,,	हरड़	५०	हेरम्ब	६८
सिपाम	९	सूर्य्यकान्त	,,	हरकुच कांटा	५५	हुलहुल	,,
सिमेना विरुंजी	,,	सेमर (मोचरस)	३१	हिलमोचिका	५६	हीरा	७०
सिरस काला	१०	सेव	३३	हरवल (खाज गोली)	,,	हेमसागर	७१
सिरस पीला	१२	सोना	३४	हरेल चारा	,,	हालोंग	७२
सिरस सफेद (गुराड़)	१३	सोनामक्खी	३६	हरफारेवड़ी	५७	क्षुद्रकान्त फला	,,
						क्षीरकाकोली	,,

विषय-सूची (२)

(संस्कृत नाम)

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
इंगुदी	६३	नाग	१५	मुञ्जातक	५	शिरीष	१०
क्षीरकाकोली	७२	पीत शीरीष	१२	रुद्रपुष्पा	६६	शुण्ठी	४५
क्षुद्रकान्तफला	,,	पूगीफल	१८	लवली	५७	शुभांजन	१
गुच्छपत्र	२	बोल	६७	शतपुष्पा	४७	शृङ्गाटक	८
टंकणक्षार	२०	भद्रबला	६४	शाकतरु	३	श्यामक	७
तिलपर्णी	६८	मधुरिका	४८	शाल्मलि	३१	साजड़ा	४

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
सावरश्रृङ्ग	३०	सूर्यमुखी	२३	हंसराज	६२	हस्तिगुण्डी	६१
सिन्दूर	१३	सूर्यरश्मि	२४	हरिकुस	५५	हिंगु	६४
सीताफल	१४	सूर्यावर्त	३८	हरिताल	५७	हिंगुपत्री	६६
सुधामूली	६	सेव	३३	हरिद्रा	५८	हिंगुल	७
सुवर्ण	३४	सोमवल्ली	४१	हरीतकी	५०	हिलमोचिका	५६
सूर्यकान्त	३०	सौवीरक	२२	हरेम्ब	६८	हीरक	७०
सूर्यक्षार	४४	स्वर्णमाक्षिक	३६	हस्तिकन्द	६२	हेमसागर	७१
सूर्यभिरा	३०	हंसपदी	६२				

विषय-सूची (३)

(मराठी नाम)

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
अनसेल	१३	बालन्तशेप	४७	सीताफल	१४	सोरा	४४
उदाला	१३	भुरूण्डी	६१	सुपारी	१८	हंसराज	६२
ऐन	४	माराण्डो	५५	सुरमा	२२	हड़ताल	५७
कांटे इन्द्रायण	७२	रानशेगटा	१	सुरावर्त	३८	हरड़ा	५०
किन्हाई	१३	राय आँवला	५७	सूर्यकान्त	३०	हरनयाग	६४
खाजगोलीची वेल	५६	शिरस	१०	सूर्यफूला	२३	हलद	५८
गूमा	६६	शिसे	१५	सेमर	३१	हिंग	६४
गेवा	१७	शेंगड़ा	८	सेवफल	३३	हिंगण	६३
जंगली सामा	७	शेन्दूर	१३	सोंठ	४५	हिंगुल	७
टांकणखार	२०	सताप	२	सोनामुखी	३६	हीरा	७०
दातुणी	६८	सलेप	५	सोने	३४	हीराबोल	६७
पर्णबीज	७१	सागवान	३	सोमवलखम	४१	हुरहुर	६८
बड़ी शेप	४८	सालम मिश्री	६	सोमवल्ली	,,		

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषय-सूची (४)

(गुजराती नाम)

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
अगनचश्मानो कांच	३०	पीलीतलवणी	६८	सिन्दूर	१३	सोमवल्ली	४१
इङ्गोरिया	६३	वज्रदन्ती	,,	सीताफल	१४	सौंफ	४८
एन	४	शिगोड़ा	८	सुंठ	४५	हंसपादी	६२
कड़वो सरगवो	१	शीसुं	१५	सुबा	४७	हड़ताल	५७
कण्टाला इन्द्राण	७२	शोपारी	१८	सुरमो	२२	हरड़े	५०
कालोओखराड़	३८	सताप	२	सुरोखार	४४	हलदर	५८
खाटीआंवली	५७	सरपानो चारो	१	सूरजमुखी	२३	हाथीसुण्डा	६१
झीनापातनो कुबो	६६	सरसड़ो	१०	सेमला	३१	हिंगलो	७
टंकणखार	२०	साग	३	सेव	३३	हींग	६४
दुधालीरवीप	४३	सामोघास	७	सोनामाखी	३६	हीराबोल	६७
नेरीवेल	६४	सालम	५, ६	सोनुं	३४	हीरो	७०

विषय सूची (५)

(बंगाली नाम)

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
असन	४	बड़ा सालपन	७	सुप्परी	१८	हरिताल	५[illegible]
असार	१३	बोल	६७	सुर्मा	२२	हरीतकी	५[illegible]
आतस पाथर	३०	मौरी	४८	सूरजमुखी	२३	हरीफूल	५७
आता	१४	शुंठ	४५	सेगुन	३	हलकुसा	६६
इरमुल	२	सालिब मिश्र	६	सेव	३३	हलदी	५८
कालीझांप	६२	सांवा	७	सोना	३४	हाथीसुरा	६१
						हिंगुल	७
कोराई	१३	सालपन	६	सोमवल्ली	४१	हिंगोन	६३
गन्धमादली	६४	सिन्दूर	१३	सोवा	४७	हिंजेशाक	५६
चकुवा	१३	सिमुल	३१	सोहागा	२०	हींग	६४
पानीफल	८	सिरिस	१०	स्वर्णमाक्षिक	३६	हुरहुरिया	६८
फुरुश	७	सीसा	१५	हरगोजा	५५	हेमसागर	७१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषय सूची (६)

(रोगानुक्रम से)

नोट—विशेष प्रभावशाली ओषधियों के आगे * ऐसे फूल लगा दिये गये हैं।

नाम	पृष्ठ
ज्वर	
सावनी	७
सोनामक्खी	३६
सोंठ	४५
सौंफ	४८
हरड़*	५०
हरताल*	५७
हस्तीशुण्डी	६१
अतिसार	
सिंघाड़ा	८
सुपारी	१८
सेमर*	३१
सेव	३३
सोंठ	४५
सौंफ	४८
हरड़	५०
मस्तकशूल और आधा शीशी	
सिरस	१०
सोंठ	४५
हरड़	५०
उदररोग	
सिरस (जलोदर)	१०
सीसा*	१५
सुहागा	२०
सोडा*	४४
सोंठ	४५
सौंफ	४८
हलियून (पीलिया)	४९
हरड़*	५०
हरकुच कांटा	५५
चर्मरोग और रक्तरोग	
सिमेना विरुञ्चो	९
सिरस	१०
सिरन	१३
सिन्दूर	,,
सिराल	,,
सीताफल	१४
सुरिन्द (गलितकुष्ठ)	१७
सुहागा* (दाद)	२०
सुरिंजान	२२
सूरजकान्ति	२३
सूर्यकिरण	२४
सोया	४७
हरड़*	५०
हड़ताल*	५७
हलदी*	५८
हस्तीशुण्डी	६१
हिङ्गोट	६३
हींग (नारू)	६४
पुरुष जननेन्द्रियरोग	
सालममिश्री* (कामोद्दीपक)	५
सिङ्गरफ* (बाजीकरण)	७
सिरस	१०
सेमर*	३१
सोना*	३४
सोडा (मधुमेह)	४४
हरड़	५०
हलदी (प्रमेह)	५८
स्त्रीरोग	
सागवान	३
सिंघाड़ा	८
सुद्दाव	२
सुहागा	२०
सूरजकान्ति (हिस्टी०)	२३
सेमर* (प्रदर)	३१
सोया*	४७
बालरोग	
साम्भरसींग	३०
सुद्दाब*	२
सुहागा	२०
हरड़*	५०
हंसपदी*	६२
हींग (हूपिङ्गकफ)	६४
खाँसी	
सुहागा*	२०
हींग	६४
हीराबोल	६७
बवासीर	
सिरस	१०
सेमर	३१
वातव्याधियाँ	
सहजना कड़वा	१
सिरस	१०
सोंठ*	४५
हड़ताल	५७
हलदी	५८
हींग	६४
क्षय या राजयक्ष्मा	
सूर्यकिरण	२३
सोना*	३४
विषविकार	
सुरपानो चारो (सर्पविष)	१
सिगड़ियो (पागलकुत्ता)	४३
सिरस (सर्पविष)	१२
सुरिन्द (बिच्छू)	१७
सुहागा (सर्पविष)	२०
सूरजकान्ति	२३
सेव (बिच्छू)	३३
सोनापाती	३७
हस्तीशुण्डी	६१
नेत्ररोग	
सिरस*	१२
सुरमा	२२
सोरा	४४
सोंठ	४५
सौंफ*	४८
हरड़*	५०
हलदी*	५८
हिंगोट	६३
दन्तरोग	
सुद्दाव	२
सिरस	१०
सुरजमुखी	२३
मृगी	
सालपन	६
सुरिन्द	१७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

INDEX (7)

(Latin Names)

Acanthus llicifolius 55
Adiantam lunulatum 62
Adantium capallis 62
Albizza lebbek 10
Albizza odoratissima 12
Albizza procera 13
Albizza stipulata „
Antimonai sulphuratum 22
Anona squamosa 14
Areca catechu 18
Arsenii trisulphi. dum 57
Asparagus officinalis 49
Aurum 34
Belamcanda Chinensis 23
Barleria longiflora 30
Balanites aegyptiaca 63
Balsamodendron myrrha 67
Bombex malabaricum 31
Calamus draco 67
Chrozophora rottleri 38
Cleome viscosa 68
Convolvulus spinosus 1
Convolvulus arvensis 64
Cotoneaster Nummuiaria 4
Colchicum variegatum 22
Curcuma longa 58
Cucumis prophitarum 72
Dipterocarpus pilosus 72
Diamond 70
Enhydra Fluctuans 56
Eulophia campesrris 6
Euphobia helioseopia 64
Excaecaria agollocha 17
Epicarpus orientalis 68
Fleminga chappar 6
Fleminga nana 7
Ferri sulphuretum 36
Ferulo narthex 64
Ficus dalhowsiae 41
Foeniculum capillaceum 48
Ferula foetida 66
Grewia microcos 13
Gymnopetalum cochinchinense 9
Helianthus annus 23
Heliotropium indicum 61
Iris nepalensis 48
Jasminum scandens 56
Kalanchoe laciniata 71
Lavandula hipinnata 1
Lagerstroemia indica 7
Laurus nobilis 49
Leucas linifolia 66
Magnyfying Glass 30
Moringa concanensis 1
Orchis latifolia 5
Panicum frumentaceum 7
Periploca aphylla 43
Peucedanum graveolens 47
Plumbi oxidum 13
Plumbum 15
Potassium nitras 44
Pura carbon adamas 70
Pyrus malus 33
Ruta graveolens 2
Salphuatum hydragyrium 7
Soda biboras 20
Soja hispida 38
Stachytarpheta indica 9
Sun beam 24
Tectona grandis 3
Terminalia tomentosa 4
Terminalia chebula 50
Tecoma stans 37
Trapa bispinosa 8
Vitis setosa 56
Zataria mulriflora 4

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(दसवाँ भाग)

सहजना कड़वा

नाम—संस्कृत—शुभाञ्जन, सिंह, गर्भपातक, रक्तशिग्रु, तिक्तशिग्रु इत्यादि। हिन्दी—सहजना कडुवा, सेम कड़वी, सहजना जङ्गली। बम्बई—सेंजना। मराठी—मुश्रा, रानशेगेटा। काठियावाड़—डुंगराउ सरगवो, कडुड़ों सरगवो। राजपुताना—हेगू, सिगारा, सुंजना। तामिल—कट्टू मरुगाई। तेलगू—कडु मुनागा। लेटिन—Moringa Concanensis (मोरिंगा कोंकेनान्सिस)।

वर्णन—कड़वे सहजने के वृक्ष मीठे सहजने के वृक्ष की अपेक्षा अधिक बड़े और मोटे होते हैं। इनकी छाल कुछ अधिक सफेदी लिए हुये और बूच (काग) की लकड़ी के समान पोची होती है। इसके पत्ते मीठे सहजने के पत्तों से बड़े और फूल उससे अधिक सफेद तथा पीली और लाल छाया लिए हुये होते हैं। इसकी फली छोटी, तिधारी और कड़वी होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कड़वा सहजना मलवर्द्धक, धातुपरिवर्त्तक, अग्निवर्द्धक, मृदुविरेचक और सूजन, वात, पित्त तथा दमे को दूर करनेवाला होता है। इसके गुण-धर्म मीठे सहजने के समान ही होते हैं।

मीठे सहजने की अपेक्षा यह विशेष गरम और विदाही होता है।

महन्त सुखराम दास अपनी 'बूटी प्रचार वैद्यक' में लिखते हैं कि—यह हर प्रकार के वायु (वात) रोगों की दवा है। इसकी अन्तर छाल को पाँच सेर पानी में डाल कर औटाना चाहिए, जब आधा पानी रह जाय, तब उस काढ़े को छान लेना चाहिए। फिर उस काढ़े में एक सेर कड़वा तेल डालकर फिर औटाना चाहिए, जब पानी का थोड़ा सा भाग शेष रह जाय तब उसे उतार कर ऊपर २ से तेल निकाल लेना चाहिए। इस तेल की मालिश करने से सब प्रकार के वात रोग जैसे गठिया, संधिवात इत्यादि रोगों में लाभ होता है।

सहसा

नाम—बलूचिस्तान—सहसा। लेटिन—Convolvulus Spinosus (कनवोलवलस स्पाइनोसस)।

वर्णन—यह वनस्पति बलूचिस्तान और अफगानिस्तान में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति एक जोरदार विरेचक वस्तु होती है।

सरपानो चारो

नाम—गुजराती—सरपानो चारो, आस्मानी गलगोटो। लेटिन—Lavandula Hipinnata (लेवेण्डुला हिप्पीनेटा)।

वर्णन—यह वनस्पति खानदेश, कोंकण, काठियावाड़, आबू पहाड़, जबलपुर और छोटा नागपुर में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति सर्पविष को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसकी जड़ को पानी के साथ पीसकर जहरीले जानवरों द्वारा काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है। साँप से काटे हुए ऐसे व्यक्तियों को जिनको बहुत नींद और बेहोशी आ रही हो उनको नींद नहीं आने देने के लिए इसके पत्तों का चूर्ण सुंघाया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सद्दाब

नाम—संस्कृत—गुच्छपत्र, पीतपुष्पा, सदापहा, सर्पदंष्ट्रा, सोमलता, विषापहा। हिन्दी—सद्दाब, सुदाब। पिसमारुम। बंगला—इरमुल, इरपन्द। गुजराती—सताप। मराठी—सताप। बम्बई—सताप। पंजाब—सुदाब, कटमाल। तामिल—अरुबदन। तैलगू—सदाप। फारसी—सुदाब। अरबी—फैजन। अंग्रेजी—Garden Rue (गार्डेन रु)। लेटिन—Ruta Graveolens (रूटा ग्रेविओलेन्स)।

वर्णन—यह एक छोटी क्षुपजाति की दुर्गन्धयुक्त वनस्पति होती है जो बगीचों में लगाई जाती है। हिन्दुस्तान की आबहवा में यह वनस्पति अच्छी नहीं होती। इसलिये ईरान से सूखे हुए रूप में यह बनस्पति हिन्दुस्तान में आकर बिकती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सुदाब का पौधा कड़वा, मृदुविरेचक, शरीर में गरमी पहुँचानेवाला और कफ तथा वात को नष्ट करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी तीन जातियाँ होती हैं—बागी, जंगली और पहाड़ी। इसका पौधा पौष्टिक, पाचक, मूत्रल, ऋतुस्राव-नियामक, गर्भघातक, कामशक्तिनाशक, शरीर में गर्मी पहुँचानेवाला, मानसिक शक्ति को बढ़ाने वाला और पुरातन प्रमेह में लाभदायक होता है।

सुद्दाब अग्निदीपक, वातनाशक, उत्तेजक, कृमिनाशक, संकोच-विकासप्रतिबन्धक, पसीना लानेवाला, मज्जा-तन्तुओं को उत्तेजना देनेवाला, मूत्रल और आर्त्तव-प्रवर्त्तक होता है। इसको त्वचा पर लगाने से यह जलन पैदा करता है और पेट में लेने से भीतरी दाह पैदा करता है। सुद्दाब का तेल नाड़ी की गति को बढ़ाता है, लेकिन उसके दबाव को कम करता है। इसके सूखे हुए पौधे की फांट देने से नाड़ी की गति धीमी हो जाती है। बड़ी मात्रा में इसको देने से नाड़ी अशक्त हो जाती है। सुद्दाब का उत्तेजक धर्म त्वचा, मज्जातन्तु और गर्भाशय पर विशेषरूप से दिखलाई देता है। इसको लेने से पसीना बहुत होता है, विचार करने की शक्ति बढ़ती है, गर्भाशय पर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। गर्भवती स्त्रियों को सुद्दाब देने से उन्हें बार-बार पेशाब होता है, कमर में दर्द होने लगता है और रोज २ देते रहने से करीब दस दिन में पीड़ा शुरू होकर गर्भपात हो जाता है। इसलिये गर्भवती स्त्रियों पर इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। इस वनस्पति से गर्भपात हो जाने के उदाहरण कई बार देखने में आये हैं। इसको बड़ी मात्रा में लेने से बहुत कष्टपूर्ण वमन होती है, बहुत थकावट आ जाती है, विचारशक्ति कमजोर हो जाती है, दृष्टि में धुँधलापन आ जाता है, नाड़ी अशक्त होकर रुक २ कर चलने लगती है, हाथ-पाँव ठण्डे हो जाते हैं और शरीर में आक्षेप होने लगता है। मतलब यह कि अधिक मात्रा में यह वनस्पति एक घातक विष का काम करती है। इसकी हरी और सूखी वनस्पति की क्रिया में कुछ अन्तर रहता है।

अगर बुद्धिमानी के साथ इसका उपयोग किया जाय तो सुद्दाब एक उत्तम और प्रभावशाली वस्तु है। स्त्रियों और बच्चों के रोगों में यह विशेषरूप से काम में आती है। इसको ज्वर में देने से पसीना होता है, पेशाब अधिक उतरता है, नाड़ी की चाल धीमी होती है और रोगी को उत्तेजना मिलती है, ज्वर में इसकी फांट बनाकर देते हैं।

बच्चों के आक्षेप रोग में सुद्दाब का स्वरस गोरोचन के साथ दिया जाता है। अर्द्धाङ्गवायु में इसके रस की शरीर पर मालिश करते हैं, कर्णशूल में इसके रस को कान में टपकाते हैं।

रुके हुए मासिकधर्म को चालू करने के लिए इसकी फांट बनाकर देते हैं। वेदनायुक्त मासिकधर्म में भी इसको देने से मासिकधर्म साफ होकर वेदना दूर हो जाती है। गर्भवती स्त्रियों को यह औषधि कदापि नहीं देनी चाहिए।

बच्चों की खाँसी, जुकाम और कुक्कुर खाँसी में सुद्दाब के स्वरस में थोड़ी हींग मिलाकर देते हैं। आफरा, उदरशूल और अपचन रोग में इसको लौंग, सोंठ इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों के साथ देते हैं।

सुद्दाब एक उग्र और नशीला विष होता है। इसके ताजे रस को लगाने से यह अपना उत्तेजक असर बतलाता है। इसकी अधिक मालिश करने से यह त्वचा पर ललाई, सूजन और फुन्सियाँ पैदा करता है।

इसका अन्तः प्रयोग हिस्टीरिया, मृगी, वातजनित उदरशूल इत्यादि रोगों में किया जाता है और इसका बाह्य प्रयोग एक चर्मदाहक वस्तु की बतौर किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह वनस्पति और इसका तेल दोनों उत्तेजक होते हैं। विशेषकर गर्भाशय और ज्ञानतन्तुओं के ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया विशेष जोरदार होती है। सुद्दाब हर हालत में गर्भवती स्त्रियों के लिए बहुत खतरनाक होता है।

बच्चों के जुकाम को दूर करने के लिए इसके सूखे पत्तों की धूनी दी जाती है। अजीर्ण और अपचन रोगों में इसका चूर्ण दूसरे सुगन्धित द्रव्यों के साथ मिलाकर दिया जाता है। इसके ताजे पत्तों से बनाया हुआ टिंक्चर पक्षाघात की प्रथम स्थिति में मालिश करने के काम में लिया जाता है। पंजाब के अन्दर इसके पत्ते सन्धिवात तथा गठिया के उपचार में लिये जाते हैं।

मध्यप्रान्त के अन्दर सुद्दाब के पत्तों को नमक के साथ पानी में पीसकर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं।

इण्डोचायना में यह वनस्पति एक ऋतुस्राव-नियामक वस्तु की तरह काम में ली जाती है। दक्षिणी अफ्रिका में इसके पत्तों का काढ़ा ज्वर के अन्दर दिया जाता है। इसके पत्तों का रस छोटे बच्चों के आक्षेप रोग में दिया जाता है। इस वनस्पति को पीसकर दाँतों पर लगाने से दन्तशूल और कान में डालने से कर्णशूल मिटता है। इसका शीत निर्यास अधिक उम्र के लोगों को श्वाससम्बन्धी रोगों में तथा हृदय रोगों में देते हैं।

ट्रान्सवाल में इसके पत्तों को शहद हृदय की खराबी से होनेवाले दमे में लाभदायक समझी जाती है और इसके कुचले हुए पत्ते पीलियारोग और बच्चों के अतिसार में उपयोगी माने जाते हैं।

कोमान के मतानुसार इस पौधे के अन्दर बहुत उत्तम और प्रभावशाली आक्षेप-निवारक तत्त्व रहते हैं। इसका रस वेस्टकॉस्ट में आमतौर पर बच्चों के आक्षेप रोग, तीव्र ब्रोङ्काइटीज और निमोनिया में दिया जाता है। निस्सन्देह इस वनस्पति में आक्षेपनिवारक और कफनिस्सारक धर्म बहुत प्रभावशाली रूप में रहते हैं। मैंने इस वनस्पति को बच्चों के जुकाम और तीव्र ब्रोङ्काइटीज में बहुत उपयोगी पाया।

सागवान

नाम—संस्कृत—शाक, क्रकचपत्र, श्रेष्ठकाष्ठ, अर्जुनोपम, शाकतरु इत्यादि। हिन्दी—सागवान, सेगोन, सागी। बंगला—सेगुन। मराठी—सागवान, साग। गुजराती—साग। पंजाब—सागुन, सागवान। तामिल—सागम, तेक्कु। तेलगू—टेकु। उर्दू—सागुन। फारसी—साज। अंग्रेजी—Teak। लेटिन—Tectona Grandis (टिक्टोना ग्रेण्डिस)।

वर्णन—सागवान के वृक्ष भारतवर्ष के प्रधान २ पहाड़ों में सब जगह होते हैं। इसकी इमारती लकड़ी सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। इसके वृक्ष बहुत ऊँचे और एकदम सीधे होते हैं। इसके पत्ते बहुत बड़े २ करीब डेढ़ फुट लम्बे और इतने ही चौड़े होते हैं। इसकी लकड़ी की दरारों में एक प्रकार का सफेद क्षार जम जाता है वह चूने की जगह खाने के काम में आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सागवान कसैला, शीतल, रक्तपित्तनाशक, गर्भ को स्थिर करनेवाला तथा वातपित्त, बवासीर, कोढ़ और अतिसार को दूर करनेवाला होता है। इसके फूल कड़वे, कसैले, विशद, रूखे, हलके, वात को कुपित करनेवाले तथा कफ, पित्त और प्रमेह को दूर करनेवाले होते हैं। इसकी छाल मधुर, रूखी, कसैली और कफनाशक होती है।

इसकी जड़ मूत्र की कमी (Anuria) और मूत्र की रुकावट को दूर करने के लिए दी जाती है। इसकी लकड़ी कसैली, शीतल, मृदुविरेचक, गर्भवती के गर्भाशय के लिए उपशामक तथा पित्तविकार, बवासीर, धवलरोग और अतिसार में लाभदायक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी लकड़ी खराब स्वादवाली और खराब गन्धवाली होती है। यह मस्तक-शूल, पित्तविकार और यकृत के निचले भाग में होनेवाले जलनयुक्त शूल को दूर करती है। प्यास को बुझाती है, कृमियों को नष्ट करती है, कफनिस्सारक होती है। इसकी राख सूजी हुई आँख की पलकों पर लेप करने के काम में ली जाती है। इसके फूलों से निकाला हुआ तेल बालों को बढ़ाता है और खुजली में लाभ पहुँचाता है।

डाक्टर देसाई के मत से सागवान के फूल और बीज मूत्रल होते हैं, इसके बीजों का तेल केशवर्द्धक और खुजलीनाशक होता है, इसके पत्ते पित्तशामक, रक्तस्रावरोधक और छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन करनेवाले होते हैं। इसकी छाल पित्तशामक, कुछ स्तम्भक और सूजन तथा कृमियों को नष्ट करनेवाली होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूत्र के रुक जाने की हालत में इसके फूलों को पानी में बाफकर पेडू पर बांधते हैं और इसकी फांट बनाकर पिलाते हैं। इससे रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इसके बीजों का तेल चर्मरोगों पर खुजली को कम करने के लिए लगाया जाता है। इस तेल को रोज बालों में लगाने से बाल काले, लम्बे और मुलायम हो जाते हैं। गर्मी या पित्त की वजह से सिर में दर्द हो रहा हो, अथवा शरीर के किसी भाग में सूजन आ रही हो तो इसकी छाल का लेप करने से बहुत लाभ होता है। पित्तप्रकोप और अपचन रोग में इसकी छाल का चूर्ण ६ माशे से १ तोले तक की मात्रा में दिया जाता है।

उपयोग—श्वेतप्रदर—सागवान की छाल का हिम बनाकर पिलाने से श्वेतप्रदर में लाभ होता है।

मस्तक-पीड़ा—इसकी लकड़ी को घिसकर लेप करने से पित्त की मस्तक-पीड़ा मिटती है।

पित्त की सूजन—इसकी लकड़ी को घिसकर लेप करने से पित्त की सूजन उतरती है।

आँखके पपुटों की सूजन—इसकी लकड़ी के कोयले को पोस्त के पानी में बुझाकर पीसकर लेप करने से आँख के पपुटों की सूजन उतरती है।

अतिसार—इसकी छाल के चूर्ण की फक्की लेने से अतिसार मिटता है।

खुजली—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से खुजली मिटती है।

दाहयुक्त सूजन—इसकी लकड़ी को जल में घिसकर लगाने से भिलावे के तेल अथवा काजू के छिलके के तेल से पैदा हुई दाहयुक्त सूजन उतर जाती है।

मूत्रावरोध—इसके फल को पीसकर पुल्टिस बनाकर पेडू पर बाँधने से मूत्र फौरन उतर जाता है।

साटर

नाम—उर्दू—साटर। लेटिन—Zataria Multifloro (झेटेरिया मुल्टिफ्लोरा)।

वर्णन—यह एक बहुत छोटी जाति की बहुशाखी वनस्पति होती है। इसके पत्ते भी बहुत छोटे छोटे होते हैं। यह वनस्पति बलूचिस्तान और अफगानिस्तान में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति सुगन्धित, उत्तेजक, पसीना लानेवाली और उदरशूल को दूर करनेवाली होती है।

सादड़ा

नाम—संस्कृत—सारद्रु, साजडा, धाराफल, श्यामसारका, वनजवृक्ष। हिन्दी—सादड़ा, ऐन, असन, साज, सैन। गुजराती—एन, सादड़ा, साजड़ियों। बंगला—असन, पियासाल। मराठी—ऐन, सादड़ा, साज। अंग्रेजी—Black Murdah (ब्लेक मुरडा) लेटिन—Terminalia Tomentosa (टर्मिनेलिया टोमेनटोसा)।

वर्णन—यह अर्जुन के वर्ग का, अर्जुन वृक्ष के समान ही एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके फूल, फल, पत्ते सब अर्जुन वृक्ष के समान होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सादड़ा कडुवा और रक्तस्राव-रोधक होता है। यह व्रण, वात, खाँसी, शरीर के किसी भी हिस्से से खून का बहना तथा हड्डी का टूटना इन सब रोगों में लाभ पहुँचाता है। इसका काढ़ा बनाकर व्रणों के ऊपर लगाया जाता है। इसकी छाल में मूत्रल और हृदय को शक्ति देनेवाले पदार्थ रहते हैं।

सुश्रुत के मतानुसार इसकी राख सर्पविष की चिकित्सा में काम आती है मगर केस और महस्कर के मतानुसार सर्पविष की चिकित्सा में यह वनस्पति या इसकी राख निरुपयोगी है।

स्याह चोब

नाम—फारसी—स्याह चोब। लेटिन—Cotoneaster Nummularia (कोटोनेस्टर न्यूमूलेरिया)।

वर्णन—यह वनस्पति पश्चिमी तिब्बत और काश्मीर में छ हजार फीट से लेकर दस हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह कफनिस्सारक, अग्निवर्द्धक और मृदुविरेचक होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सालम मिश्री

नाम—संस्कृत—मुञ्जातक, बीजगन्ध, सुरपेय, द्रुतफला इत्यादि। हिन्दी—सालम मिश्री। गुजराती—सालम मराठी—सलेप। पंजाब—सालिब मिश्री। ईरान—संग मिश्री। लेटिन—Orchis Latifolia (आर्चिस लेटिफोलिया)।

वर्णन—यह एक क्षुद्र जाति की वनस्पति होती है। यह नैपाल, काश्मीर, अफगानिस्तान और ईरान में पैदा होती है। इस वनस्पति का कन्द सालममिश्री कहलाता है। इसकी चार-पाँच जातियाँ होती हैं—(१) सालम पंजा (Oachis Latifolia) इसका कन्द आदमी के पंजे के आकार का होता है। (२) सालम लहसनिया या अबुशाहरी (Orchis Lexiflora) इसके कन्द का आकार लहसन की गठान की तरह होता है। (३) सालमे बादशाही उर्फ बसरा (Orchis Mascula) इसके चपटे टुकड़े होते हैं। (४) सालम लाहौरी (Eulophia Campestris) और (५) सालम मद्रासी, यह नीलगिरि पहाड़ पर पैदा होती है और उटकमण्ड में बिकती है। इसका कन्द छोटा होता है और इसका आकार भी दूसरे प्रकार का होता है। लहसनिया सालम का कन्द १ से १॥ इञ्च तक लम्बा, गूगला, गोंद की तरह तथा बहुत चीठा होता है।

बाजार में नकली सालम भी बहुत बिकती है जो आलू के आटे तथा गोंद को मिलाकर बनाई जाती है। असली सालम बहुत चीठा और सख्त होता है। यह बहुत कठिनाई से कूटने में आता है। इसमें किसी प्रकार की गन्ध और स्वाद नहीं होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सालममिश्री अग्निदीपक, शुक्रजनक, बलकारक, रक्तशोधक, हृदय में हितकारी, कामोद्दीपक, रसायन, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक; अवस्थास्थापक और पौष्टिक होती है।

सालम मिश्री यह एक अत्यन्त पौष्टिक वस्तु होती है। इसका सिर्फ एक तोला चूर्ण प्रौढ़ मनुष्य के लिए चौबीस घण्टे तक पूरी खुराक का काम दे सकता है। इतनी थोड़ी मात्रा में मनुष्य की जीवनरक्षा करनेवाला कोई दूसरा अन्न नहीं होता है। इसी से कई लोग अष्टवर्ग में वर्णित जीवक इसी को मानते हैं। इस औषधि में मस्तिष्क और मज्जातंतुओं के लिए उत्तेजक, संग्राहक, पौष्टिक और स्तम्भक धर्म भी रहते हैं। मतलब यह कि सालम जीवनी शक्तिवर्द्धक, कामोद्दीपक और अवस्थास्थापक होता है। ऊपर वर्णित की हुई सालम की सभी जातियों में ये गुण कम-अधिक मात्रा में रहते हैं मगर इन सब में सालम पंजा सर्वोत्कृष्ट होती है और मद्रासी तथा लहसनिया सालम कनिष्ठ दर्जे की होती हैं।

पाचननलिका के दाहयुक्त रोगों में सालम बहुत लाभदायक होती है। इससे कफ की कमी होती है, और दुर्बलता दूर होती है। सालम पचने में हलकी होती है और इसका संग्राहक धर्म उत्तम और स्पष्ट होता है। अतिसार, आँव, गर्भावस्था में लगने वाले दस्त और अपचन रोग में यह बहुत उत्तम वस्तु है। इन रोगों में इसको द्राक्षा के साथ देते हैं। कफ रोगों में सालम को बकरी के दूध के साथ देने से कफ की कमी हो जाती है।

मस्तिष्क और मज्जातंतुओं में अधिक दिमागी काम करने की वजह से कभी बहुत थकावट आ जाती है और उसकी क्रिया में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में सालम का उपयोग करने से मस्तिष्क की क्रिया सुव्यवस्थित हो जाती है। कोमल प्रकृति की स्त्रियों में प्रसूतिकाल के पश्चात्, अथवा अतिशय आयास और अतिशय मैथुन से जो थकावट पैदा हो जाती है उसमें भी सालम बहुत अच्छा काम करती है।

रासायनिक विश्लेषण—सालम के अन्दर ४८ प्रतिशत एक प्रकार का गोन्द (बोल) रहता है। पुराने और अधिक समय के कन्द में यह नहीं मिलता, मगर बाजू के छोटे और कोमल कन्दों में यह काफी तादाद में रहता है। इसको खारे पानी में डालने से पानी का खारापन नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ आटा, शक्कर, मांसवर्द्धक द्रव्य और ताजी हालत में एक प्रकार का उड़नशील तेल रहता है। इसकी राख २ प्रतिशत पड़ती है और उस राख में यवक्षार, फास्फेट्स, क्लोराइड ऑफ पोटासियम और केलसियम पाये जाते हैं।

बनावटें—कामोद्दीपक चूर्ण—सालम मिश्री, तोदरी सफेद, कौंच के बीजों की मगज, इमली के बीजों की मगज, तालमखाना, सरवाली के बीज, मूसली, काली मूसली, सेमर मूसली, बहमन सफेद, बहमन लाल, शतावर,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बबूल का गोंद, बबूल की कच्ची या सूखी फली, ढाक की नर्म कली, इन सब चीजों को समान भाग लेकर बारीक पीस लेना चाहिये, फिर सारे चूर्ण का जितना वजन हो उतनी ही मिश्री मिलाकर बोतल में भर लेना चाहिये।

इस चूर्ण को एक तोले की मात्रा में सबेरे शाम मिश्री मिले हुए गाय के दूध के साथ सेवन करना चाहिये। कुछ दिनों तक लगातार इसका सेवन करने से नये और पुराने प्रमेह, कामशक्ति की कमजोरी, शीघ्रपतन, सिर का दर्द, कमर का दर्द इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। पुरुष की स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति बढ़ती है। इस चूर्ण को कम से कम चालीस दिन तक सेवन करना चाहिये और सेवन करते समय स्त्रीप्रसंग, खटाई तथा तेल इत्यादि गर्म वस्तुओं से परहेज करना चाहिए।

सालम पाक—सालम पंजा १० तोले, सफेद मूसली, बिदारीकन्द, चोबचीनी, गोखरू, कौंच के बीज, तालमखाना, शतावरी, खरैटी के बीज, गँगेरन की जड़ की छाल, सेमर मूसली और आँवला, ये सब चीजें पाँच पाँच तोला लेकर सबका महीन चूर्ण करके पाँच सेर गाय के दूध के साथ सबका खोवा बनाकर उस खोवे को घी में भून लेना चाहिए। फिर वंशलोचन, इलायची, पीपर, पीपलामूल, जायफल, जावित्री, अकरकरा ये सब चीजें ढाई २ तोला, गिलोयसत्व २ तोला, प्रवालपिष्टि २ तोला, अभ्रक ६ माशा, कान्तिसार ६ माशा, वंग भस्म ६ माशा, बादाम की मगज २० तोला, पिश्ता १० तोला, नारियल का गोला २० तोला, चिरोंजी १० तोला और तला हुआ बबूल का गोन्द १० तोला इन सब चीजों को उस खोवे में मिलाकर ५ सेर शक्कर की चाशनी में उस औषधि मिश्रित खोवे को और १ तोला घुटी हुई केशर को मिलाकर छटाँक २ भर के लड्डू बना लेना चाहिए।

प्रतिवर्ष के जाड़े के दिनों में चालीस दिनों तक एक लड्डू सबेरे और एक लड्डू शाम को खाकर ऊपर से मिश्री मिला दूध पी लेना चाहिए। इस पाक के सेवन से मनुष्य की कामशक्ति, मेधाशक्ति, जीवनीशक्ति तथा रोग निवारकशक्ति (Immunity Power) एक वर्ष तक सुरक्षित रहती है। स्त्रियों के साथ रमण करने से, दिमागी मेहनत करने से तथा दूसरे परिश्रम से मनुष्य की जो शक्तियाँ खर्च होती हैं वे इसके सेवन से कई अंशों में पुनः प्राप्त हो जाती हैं। इसके सेवन से मनुष्य के रक्त में रोगों से मुकाबिला करनेवाले तत्त्व बढ़ जाते हैं, जिससे किसी भी रोग का हमला उस पर कठिनाई से होता है। यह बहुत उत्तम योग है।

सालम लाहौरी

नाम—संस्कृत—सुधामूली, अमृता, अमृतोत्भव, जीवा, जीवनी, प्राणदा, वीरकन्दा। हिन्दी—सालिब मिश्री लाहौरी। पंजाब—सालिब मिश्री। बङ्गाल—सालिबमिश्री, संगमिश्री। गुजराती—सालम। मराठी—सालम मिश्री। फारसी—संगमिश्री। नेपाल—हत्तिपेला। संथाल—भोंगाटेनी। उर्दू—सालिबमिश्री। लेटिन—Eulophia Campestris (इलोफिया कम्पेस्ट्रिस)।

वर्णन—यह सालममिश्री की एक देशी जाति होती है जो नेपाल, सिकिम, चटगाँव, बंगाल और रुहेलखण्ड में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी गठान भूख बढ़ानेवाली, अग्निवर्द्धक, मीठी, कसैली, उष्णवीर्य, भारी, रसायन, कामोद्दीपक, धातुपरिवर्त्तक, रक्तशोधक और हृदय रोगों में लाभ पहुँचानेवाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका कन्द कामोद्दीपक, संकोचक, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और पक्षाघात में लाभ पहुँचानेवाला होता है

सालममिश्री शरीर को सुखानेवाले क्षयरोग तथा दूसरे रोगों में बहुत लाभदायक होती है। इसके प्रयोग से शर्कराश्मरी मिटती है। मिश्री के साथ इसके चूर्ण की फक्की लेने से वीर्य्य की कमजोरी दूर होती है। इसको पीसकर दूध में औटाकर पिलाने से आमातिसार मिटता है। स्नायु जाल की कमजोरी को मिटाने के लिय सूखी सालममिश्री का चूर्ण दूसरी उपयुक्त औषधियों के साथ देना चाहिए। पक्षाघात रोग में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

सालपन

नाम—हिन्दी—सालपन। बंगला—सालपन। देहरादून—छन्चरा। अवध—कसरौट। लेटिन—Flemingia Chappar (फ्लेमिंगिया चापार)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा वनस्पति होती है, इसकी ऊँचाई ·६ से ·१२ मीटर तक होती है। इसके पत्ते छोटे और कुछ पीले रंग के होते हैं। यह वनस्पति बंगाल, बिहार, दक्षिणी भारत और बरमा में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—सन्थाल जाति के लोग इसकी जड़ को मृगी रोग के अन्दर देते हैं। नींद लाने के लिए भी इस औषधि का प्रयोग किया जाता है।

सालपन बड़ा

नाम—हिन्दी—बड़ा सालपन। बङ्गला—बड़ा सालपन। लेटिन—Flemingia Nana (फ्लेमेंगिया नाना)।

वर्णन—यह छोटी जाति की वनस्पति ६ से लेकर ८ इञ्च तक ऊँची होती है। यह गंगा के उत्तरीय मैदानों में तथा बिहार और छोटा नागपुर में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ घाव और सूजन पर लेप करने के काम में ली जाती है।

सावनी

नाम—हिन्दी—सावनी, तेलिंगाचिना, फुरुश। बंगाल—फुरुश, तेलिंगाविना। बम्बई—घायटी। तामिल—सिनाप्पु। तेलगू—चिनानोरेंटा। इंग्लिश—Indian Lilac (इण्डियन लिलाक)। लेटिन—Lagerstroemia Indica (लेजेस्ट्रोमिया इण्डिका)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते २ से लेकर ३ इंच तक लम्बे होते हैं। इसके फूल मध्यम कद के सफेद और लाल रंग के होते हैं। इसके बीज भूरे रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति आसाम, चटगाँव, लोअर बर्मा और पश्चिमी घाट में पैदा होती है।

इसकी छाल उत्तेजक और ज्वरनाशक होती है। इसकी छाल, पत्ते और फूल विरेचक, जलनिस्सारक और तेज दस्तावर होते हैं।

सामाघास

नाम—संस्कृत—श्यामक, श्यामा, सुखमारा, अविप्रिया, राजधान्य, त्रिबीज, तृणबीजोत्तम। हिन्दी—सामाघास, समाक, साँवा। बंगाल—साँवा, शामुला, श्यामधान। बिहार—साँवां। गुजराती—सामोघास। मराठी—जंगली सामा। पंजाब—चन्द्रा, सामा, सोक। बम्बई—बाक्टो। फारसी—बाजरी। लेटिन—Panicum Frumentaceum (पेनिकम फ्रुमेण्टासियम), Echinochloa Colona (एचिनोचलोआ कोलोना)।

वर्णन—यह एक जाति की घास होती है जो बरसात के दिनों में जल के किनारे बहुत पैदा होती है। इसके बीजों को गरीब लोग खाते हैं। समाघास की कुल ५५ जातियाँ होती हैं। इस घास को ढोर बड़े शौक से खाते हैं। इस घास से कागज भी बनाये जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सामाघास मधुर, स्निग्ध, कसैली, हलकी, शीतल, वातकारक, कफपित्तनाशक, मलरोधक और विष के दोषों को दूर करनेवाली होती है।

सामाघास की एक दूसरी जाति (Echinochloa Crusgalli) रक्तस्रावरोधक और तिल्ली के विकारों को दूर करनेवाली होती है।

सिंगरफ

नाम—संस्कृत—हिंगुल, रक्तपारद, रसगर्भ इत्यादि। हिन्दी—सिंगरफ, हिंगलू, इंगुर। मराठी—हिंगूल। बंगला—हिंगुल। गुजराती—हिंगलो। फारसी—सिंगरफ। अरबी—जंजफर। इङ्गलिश—Sulphate of Mercury (सल्फेट ऑफ मरक्युरी)। लेटिन—Salphuatum Hydragyrium (सल्फएटम हायड्राजीरम), Litoca polyantha (लिटोका पोलीएन्था)।

वर्णन—सिंगरफ एक खनिज द्रव्य है। यह पारा और गन्धक का मिश्रण होता है। यह तीन प्रकार का होता है। चर्मार, शुकतुण्डक और हंसपाद। इनमें चर्मार हिंगुल सर्द रंग का, शुकतुण्डक पीले रंग का और हंसपाद जपा के फूल के समान लाल रंग का और अति उत्तम होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सिंगरफ कड़वा, कसैला, चरपरा तथा नेत्ररोग, कफ-पित्त, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात और विष को दूर करनेवाला होता है।

सिंगरफ कड़वा, गरम तथा वात, कफ, त्रिदोष, द्वन्द्वज रोग और ज्वर को नष्ट करता है।

हिंगुल सर्वदोषनाशक, दीपन, अतिरसायन, सर्वरोगनाशक, वीर्यवर्द्धक, जारण और लोहे को मारने में उत्तम होता है।

सिंगरफ को शुद्ध करने की विधि—सिंगरफ को नीम्बू के रस, भेड़ के दूध तथा नीम के पत्तों के रस में एक-एक बार खरल करके सुखा लेने से यह शुद्ध हो जाता है। अगर विशेष शुद्ध करना हो तो उपरोक्त तीनों चीजों से सात २ बार खरल करके सुखाना चाहिए।

शिगरफ को भस्म करने की विधि—उपरोक्त विधि से शुद्ध किये हुए सिंगरफ को सफेद कनेर की जड़ की छाल के रस में एक दिन तक खरल करके उसकी टिकड़ियाँ बना लेनी चाहिये। इन टिकड़ियों को सुखाकर, सफेद कनेर के २०० फूलों को पीस कर उनकी लुगदी बनाकर उस लुग्दी में उन टिकड़ियों को रखकर सराब-सम्पुट में बन्द करके कपड़मिट्टी कर गजपुट की आँच में फूँक देना चाहिए। इससे सफेद रंग की निधूॅम भस्म तैयार होगी, इस भस्म को कोयले के अंगारे पर थोड़ी-सी डाल कर जाँच लेना चाहिए, अगर धुँवा बिलकुल न उठे तो समझना चाहिए कि उत्तम भस्म तैयार हो गई है, अगर धुँवा थोड़ा उठता दिखलाई दे तो एक बार फिर उपरोक्त विधि से कनेर के फूलों की लुगदी में रख कर उसे फूँक लेना चाहिए।

जाड़े के दिनों में इस भस्म को एक चावल के बराबर मात्रा में मक्खन के साथ खाकर ऊपर से मिश्री मिला गरम दूध पीना चाहिए तथा तैल, गुड़, खटाई, मिरची, अचार, स्त्रीप्रसंग इत्यादि चीजों से परहेज करना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों तक इस भस्म का सेवन करने से नपुंसकता, खाँसी, दमा, उपदंश, वातरक्त, कुष्ठ इत्यादि रोगों में काफी लाभ होता है।

हिंगुल से पारद निकालने की विधि पारद के प्रकरण में दे दी गई है।

हिंगुल और बाजीकरण—एक सेर उड़द की दाल को पानी में गलाकर उस दाल में डेढ़ माशा शुद्ध हिंगुल मिला देना चाहिए और एक स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट बकरी को यह दाल खिला देना चाहिए। उसके पश्चात् बकरी को जंगल में चरने को छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार यह योग उसे प्रतिदिन खिलाना चाहिए। जब बकरी को यह योग खाते आठ दिन हो जाँय तब उसका दूध निकाल कर पीना चाहिए। इस प्रकार तीस दिन तक यह योग बकरी को खिलाना चाहिए तथा खिलाना शुरू करने के आठ दिन पश्चात् से लेकर खिलाना बन्द करने के आठ दिन बाद तक मनुष्य को उसका दूध सेवन करना चाहिए।

यह एक अतिउत्तम योग है। तीस दिन तक इस दूध का लगातार सेवन करने से जन्म के नपुंसक को छोड़कर, किसी भी प्रकार की कष्ट साध्य स्थिति में पहुँचे हुए नपुंसक की नपुंसकता दूर हो जाती है। उसकी काम-शक्ति बेहद बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त उसकी जीवनशक्ति, उसकी रोगनिवारक शक्ति, उसकी कांति, ओज इत्यादि सभी प्रकार की शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। शुद्ध पारद को खाने से जो जो क्रियाएँ मनुष्य-शरीर में होती हैं वे सब इस योग से भी होती हैं। लाभ इतना ही है कि प्रत्यक्ष पारद को खाने से, उसकी प्रतिक्रियाओं का जो भय रहता है वह इस योग में नहीं रहता। कई लोगों की यह मान्यता है कि बकरी के पेट में पारद की जैसी शुद्धि होती है वैसी किसी भी दूसरी क्रिया से नहीं होती। इसमें पारद के सब गुण मनुष्य को प्राप्त हो जाते हैं मगर उसके दोषों से वह बिलकुल बचा रहता है।

सिंघाड़ा

नाम—संस्कृत—शृङ्गाटक, जलफल, त्रिकोणफल, जलकण्टक इत्यादि। हिन्दी—सिघाड़ा। बंगला—पानीफल। मराठी—शेंगाडा। गुजराती—शिंगोड़ा। काश्मीर—गौरी। पंजाब—गौरी, सिंघाड़ा। तामील—सिंघाड़ा। उर्दू—सिंघाड़ा। अंग्रेजी—Singhara nut (सिंघाड़ा नट)। लेटिन—Trapa Bispinosa (ट्रेपा विसपिनोसा)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्णन—सिंघाड़े की बेलें तलावों में जल के अन्दर पैदा होती हैं। इन बेलों के ऊपर तीन धारवाले फल लगते हैं जो कच्ची हालत में हरे और पकने पर काले हो जाते हैं। इन फलों के दोनों किनारे तेज काँटेदार रहते हैं। इस फल के भीतर सिंघाड़ा रहता है यह कच्ची हालत में दूधिया रसदार और सूखने पर सख्त हो जाता है। औषधि प्रयोग में इसका फल ही काम में आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सिंघाड़े शीतल, स्वादिष्ट, भारी, वीर्यवर्द्धक, कसैले, मलरोधक, वातकारक, कफनाशक तथा रक्तपित्त और दाह को दूर करनेवाले होते हैं।

राजनिघण्टु के मत से सिंघाड़े रक्तपित्तनाशक, हलके, कामोद्दीपक, त्रिदोपनाशक, तापनिवारक, श्रमहारक, रुचिकारक और लिंग को दृढ़ करनेवाले होते हैं।

निघण्टुरत्नाकर के मत से सिंघाड़े अत्यन्त कामोद्दीपक, हलके, मलरोधक, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, वात और कफ को पैदा करनेवाले, लिङ्ग को दृढ़ करनेवाले, कसैले, मधुर, शीतल, तृप्तिकारक, स्वादिष्ट, पित्तनाशक तथा दाह, त्रिदोष, प्रमेह, रुधिर-विकार, भ्रम, सूजन और सन्ताप को हरनेवाले होते हैं।

सिंघाड़े की पैज बनाकर, अतिसार, आँव और प्रदररोग में देते हैं। इसके सेवन से कफ पड़ना और रक्त बहना कम हो जाता है और रोगी का रंग फीका नहीं होता, गर्भवती स्त्रियों को भी यह बेखटके दी जा सकती है। पित्त प्रकृति के मनुष्यों के लिए यह पेज बहुत गुणकारी होती है।

सिंघाड़े का फल एक खाद्य पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है। हिन्दू लोग एकादशी के व्रत में इसको फलाहार के रूप में लेते हैं। यह मीठा और शीतल होता है। पित्तविकार और अतिसार में इसका उपयोग किया जाता है। पुलटिस के रूप में इसका बाह्य उपयोग भी होता है।

कम्बोड़िया के लोग इसके फल को पौष्टिक और ज्वरनाशक समझते हैं। वे इसका निर्यास मलेरिया और दूसरे ज्वरों की कमजोरी को दूर करने के लिए देते हैं।

भावप्रकाश के मतानुसार इसका फल दूसरी औषधियों के साथ सर्पविष को दूर करने के लिए दिया जाता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पविष में निरुपयोगी है।

उपयोग—**अतिसार**—सिंघाड़े का सेवन करने से अतिसार मिटता है।

दाह—सिंघाड़े की बेल को पीसकर लेप करने से दाह मिटता है।

रक्त प्रदर—सिंघाड़े के आटे की रोटी बनाकर खाने से रक्तप्रदर मिटता है।

वीर्य्यवर्द्धन—सिंघाड़े के आटे की दूध के साथ फक्की लेने से अथवा उसका हलवा बनाकर खाने से वीर्य बढ़ता है।

सिपाम

नाम—मलयालम—सिपाम। **लेटिन**—Gymnopetalum Cochinchinense (जिम्नोपेटेलम कोचीनचिनेन्स)।

वर्णन—यह वनस्पति मलाया, पेनिनशुला और चीन में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—छोटा नागपुर की मुण्डा जाति के लोग इसकी जड़ की गठान को कुचल कर उसे गर्म पानी में मिला कर किसी भी दर्द के स्थान पर दर्द को दूर करने के लिए मालिश करते हैं। शरीर के अवयवों की क्षीणता को दूर करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

सिमेना विरुंजी

नाम—तामिल—सिमेना विरुंजी। लेटिन—Stachytarpheta Indica (स्टेचिटारफेटा इण्डिका)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की वर्षजीवी वनस्पति होती है जो भारतवर्ष, अमेरिका, अफ्रिका में पैदा होती है। कहीं-कहीं इसकी खेती भी की जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—ब्राझील में यह वनस्पति बहनेवाले व्रणों के ऊपर लगाने के काम में ली जाती है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तथा ज्वर और संधि वात में इसको खिलाई जाती है। गायना में अतिसार के अन्दर इसको देते हैं। लारियूनियन में इसके पत्ते फोड़ों को पकाने के लिए बाँधे जाते हैं। गाल्ड कास्ट में इसके पत्तों का रस नेत्ररोगों को दूर करने के लिए आँखों में टपकाया जाता है। हृदय रोगों में भी यह उपयोगी मानी जाती है।

सिरस काला

नाम—संस्कृत—शिरीष, भण्डीर, शुकपुष्प, विषनाशन, स्वर्णपुष्पक इत्यादि। हिन्दी—सिरस, काला सिरस। बङ्गला—सिरिस। गुजराती—सरसड़ो, कालियो सरस। मराठी—शिरस। कोंकण—गारसो। फारसी—दरख्ते जकरिया। अरबी—सुलतानुल असजार। उर्दू—दराश। तामिल—सोनागम। तैलगू—सिरशामु। अंग्रेजी—Siris Tree (सिरिस ट्री) लेटिन—Albizza Lebbek (एलबिझा लेबक)।

वर्णन—सिरस के वृक्ष बहुत ऊंचे-ऊंचे होते हैं। इसके पत्ते एक से लेकर डेढ़ इंच तक लम्बे, इमली के पत्तों के आकार के मगर उनसे बड़े होते हैं। इसके फूल अत्यन्त कोमल छोटे और सुगन्धित होते हैं। इनका रंग कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है। इसकी फलियाँ चरपरी, भूरे रंग की और छः से बारह इंच लम्बी होती हैं। हर एक फलों में दस बारह बीज रहते हैं जो बहुत सख्त होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सिरस कड़ुवा, शीतल तथा विष, खुजली, रुधिर-विकार, कुष्ठ, कण्डू और त्वचा के दोषों को दूर करनेवाला होता है।

सिरस बवासीर, विष, पसीना, चर्मरोग, सूजन और विसर्प को दूर करता है।

भावप्रकाश के मत से सिरस मधुर, अनुष्ण, कड़वा, कसैला, हलका तथा सूजन, विसर्प, खाँसी, व्रण और विष को हरनेवाला होता है।

इसकी जड़ सूर्य्यावर्त या आधा शीशी रोग में लाभ पहुँचाती है। इसकी छाल कड़वी, शीतल, विषनाशक, कृमिनाशक तथा बात, रक्तरोग, बवासीर, सूजन, विसर्प, खाँसी और चूहे के विष को दूर करती है। इसके पत्ते आँख के दुखने को अच्छा करते हैं। इसके फूल दमा और सर्पविष में उपयोगी होते हैं और इस वनस्पति के सभी अङ्ग सर्पविष में लाभ पहुँचाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ संकोचक और नेत्राभिष्यन्द रोग में लाभ पहुँचाती है। इसकी छाल कृमिनाशक, दंतशूल को दूर करनेवाली, मसूड़ों को बल देनेवाली तथा कुष्ठ, बहरापन, विस्फोटक, खुजली, उपदंश, पक्षाघात और कमजोरी में लाभ पहुँचाती है। इसके पत्ते रतौंधी को दूर करते हैं। इसके फूल कामोद्दीपक, स्निग्ध और फोड़े को पकानेवाले होते हैं, इनको सूंघने से आधाशीशी मिटती है। इसके बीज कामोद्दीपक, मस्तिष्क को शक्ति देनेवाले तथा सुजाक और कण्ठमाला में लाभदायक होते हैं। इसका तेल श्वेतकुष्ठ पर लगाने के काम में आता है।

इसके बीज संकोचक और धातुपौष्टिक होते हैं और ये अतिसार तथा धातु की कमजोरी में उपयोग में लिये जाते हैं। इसके पत्तों का पुलटिस बनाकर त्वचा के रोग, फोड़े, फुन्सी और सूजन के ऊपर बांधा जाता है। इसकी छाल का चूर्ण अंजन की बतौर आँख के रोगों को दूर करने के लिये आँखों में आंजा जाता है। इसकी छाल का काढ़ा मुँह के छालों और मसूड़ों की सूजन में कुल्ले करने के उपयोग में लिया जाता है। इस काढ़े को पेट में पीने से यह रक्तशोधक और कामोद्दीपक प्रभाव बतलाता है।

इसके पत्तों का रस रतौंधी को दूर करने के लिए आँखों में आंजा जाता है और इस प्रयोग के साथ ही भीतरी उपचार की तरह इसका काढ़ा पिलाया जाता है। इसकी छाल का काढ़ा दाँत के मसूड़ों को मजबूत करने के लिए कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। इसकी छाल का चूर्ण, आठ से दस रत्ती तक तीन चार माशे घी के साथ मिलाकर प्रतिदिन खाने से उत्तम शक्तिवर्द्धक और रक्तशोधक वस्तु का काम करता है। इसके बीज वीर्य्यस्तम्भक और कामोद्दीपक होते हैं। इसके बीजों का दो माशा चूर्ण चार माशा शक्कर के साथ प्रति दिन गरम दूध के साथ लेने से वीर्य को बहुत गाढ़ा करता है। इसके बीजों को पानी के साथ पीसकर उनका लेप गले की गठानों पर करने से वे गठानें बैठ जाती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सिरस और नेत्ररोग—यूनानी हकीमों का कथन है कि नेत्रों के हर प्रकार के रोगों में यह वनस्पति बहुत चमत्कारिक लाभ पहुँचाती है। कराबादीन जुकाई नामक पुस्तक में लिखा है कि मेरठ के शाहजादे की दोनों आँखों में फूले पड़ गये। अनेक हकीमों ने अनेक प्रकार की औषधियाँ इनको दूर करने के लिये उपयोग में लीं मगर किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ। तब हादीहुसैन नामक हकीम ने सिरस के योग से नीचे लिये प्रयोग को बनाकर शाहजादे की आँखों में आंजा, जिससे वे फूले कट गये। वह प्रयोग इस प्रकार है—

काँच की हरी चूड़ियाँ १ तोला, मुरगी के अण्डे के छिलके ४।। माशे, अनविंधे मोती ४।। माशे, ममीरा ४।। माशे, (अगर ममीरा न मिले तो सफेद पुनर्नवा की जड़ ले सकते हैं) और हलदी २ माशे। सबसे पहले कांच की चूड़ी को पानी के साथ तीन दिन तक खूब खरल करना चाहिए। उसके पश्चात् उसमें शेष सब औषधियों को मिलाकर अच्छी तरह खरल करके दिन में दो बार आँखों में आँजना चाहिए और ऊपर से सिरस के पत्तों की बाफ कर आँखों पर बांधना चाहिए जिससे आँख का फूला थोड़े ही दिनों में कट जाता है।

खिरनी के बीजों को पीसकर उनको चार-पाँच दिन तक सिरस के पत्तों के रस में खरल करके फिर पाँच-छः दिन बड़ के दूध में खरल करना चाहिए, इस योग को भी आँख में आँजने से आँख की फूली कट जाती है।

हकीम जफरउल्ला खाँ लिखते हैं कि सिरस के पत्तों का रस चालिस तोला लेकर कोरी मिट्टी के बरतन में भरकर उसमें सेंधानमक, फुलाई फिटकरी, नौसादर, सुहागी और सज्जीखार से सब चीजें दस-दस तोला डालकर उस बरतन का मुँह बन्द करके तीन दिन तक पड़ा रखना चाहिए, चौथे दिन उस बरतन का मुँह खोलने पर उसमें सफेद रंग की फूल के समान औषधि निकलेगी। इस औषधि में समान भाग काला सुरमा मिलाकर खरल करके आँख में आँजने से सब प्रकार के नेत्र रोग दूर होते हैं।

सर्पविष और सिरस—हकीम जलालुद्दीन लिखते हैं कि सिरस की अन्तर्छाल, सिरस की जड़ की छाल, सिरस के हरे पत्ते और सिरस के फूल ये सब चीजें बीस २ तोला लेकर पुरुष के मूत्र में पीसकर लुग्दी कर लेना चाहिये, फिर इसमें १०० तोला पुरुष का मूत्र डालकर आग पर चढ़ा देना चाहिए, जब वह खदबदाने लगे तब उसमें २५ तोला गाय का घी डालकर फिर पकाना चाहिए, जब पेशाब का सब भाग जल जाय तब उसमें से घी को छानकर बोतल में भर लेना चाहिए। सर्पदंश वाले मनुष्य को यह घी पिलाने से विष नष्ट हो जाता है। साधारण विष में एक रत्ती घी पिलाने से विष नष्ट हो जाता है। मगर भयंकर विष में तीन से चार रतल तक घी पिलाना पड़ता है।

सफेद मिरच को सिरस के फूलों के रस की सात भावनाएँ देकर उनका चूर्ण करके नाक में सुंघाने से और आँखों में आँजने से भी सर्पविष में लाभ होता है।

अकबरनामे में एक स्थान पर लिखा है कि एक किले में बहुत वर्षों का पुराना अनाज इकट्ठा करके रक्खा हुआ था। उस अनाज को खाने से उस किले के हर एक आदमी को सूजन और जलोदर हो गया जो अनेक औषधियाँ करने पर भी आराम नहीं हुआ। अन्त में जिन-जिन लोगों को सिरस की छाल का काढ़ा पिलाया गया उन सबको आराम होने लगा, इसके परिणामस्वरूप वहाँ पर सिरस छाल इतनी महँगी हो गई कि रुपये की रुपये भर बिकने लगी।

एक यूनानी हकीम का कथन है कि सिरस के बीजों के चूर्ण को दुगुनी शहद में मिलाकर, उस बर्तन का मुँह बन्द करके चालीस दिन तक गेहूँ के कोठे में गाड़ देना चाहिए। फिर तीन माशे की मात्रा में प्रतिदिन लेने से सब प्रकार के रक्तविकार, कण्ठमाला, उपदंश इत्यादि रोग दूर होते हैं।

सिरस के बीज, यवक्षार, सज्जीक्षार, कलिहारी की जड़ और सेंधानमक इन सब चीजों को थूहर के दूध में खरल करके गोमूत्र में मिलाकर तीन दिन तक बवासीर के मस्सों पर लेप करने से सब जाति के बवासीर आराम हो जाते हैं। (जं० जं०)

उपयोग—गण्डमाला—सिरस के छः माशे बीजों को पीसकर उनकी फक्की लेने से गण्डमाला की पेशियों की सूजन उतरती है। इसके बीजों को पीसकर उनका लेप करने से भी गण्डमाला की सूजन उतरती है।

मसूड़े के रोग—इसकी जड़ की छाल के चूर्ण से मंजन करने से पके हुए मसूड़ों का रोग मिटता है और दाँत मजबूत हो जाते हैं।

मूत्रकृच्छ्र—सिरस के बीजों के तेल को दूध की लस्सी में डालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है। इसके पत्तों की लुग्दी को पानी में छानकर मिश्री मिलाकर पीने से भी मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जलोदर—सिरस की छाल का क्वाथ बनाकर पिलाने से जलोदर की सूजन उतरती है।

आधाशीशी—सिरस के बीजों को पानी के साथ पीसकर साफ कपड़े की पोटली में बाँधकर जिस बाजू में पीड़ा हो उसी बाजू के नाक की छिद्र में इसकी दो-तीन बूँदे टपकाने से आधा शीशी मिट जाती है।

श्वेतकुष्ठ—सिरस के बीजों के तेल की मालिश करने से श्वेतकुष्ठ में लाभ होता है।

कुष्ठ—सिरस के डेढ़ तोले पत्तों को २ माशे काली मिरच के साथ पीसकर ४० दिन तक पीने से कुष्ठ में बहुत लाभ होता है।

विषविकार—पुराने सिरस की अन्तर्छाल और जड़ की छाल तथा बीज और फूलों को गोमूत्र के साथ दिन में तीन बार पिलाने से सब प्रकार के विष विकार में लाभ होता है।

मिथुन की संक्रान्ति में इसकी सात माशे छाल को पीसकर चावलों के धोवन के पानी के साथ तीन दिन तक पी लेने से सर्पादिक जहरीले जानवरों का विष नहीं चढ़ता है।

सन्निपातज मूर्च्छा—सिरस के बीज और कालीमिरच समान भाग लेकर बकरी के मूत्र के साथ पीसकर आँख में आंजने से सन्निपातज मूर्च्छा मिटती है।

विसर्प—सिरस की छाल के चूर्ण को सौ बार धोये घी में मिलाकर लेप करने से विसर्प रोग मिटता है।

सूर्य्यावर्त आधाशीशी—सिरस के बीजों के चूर्ण को सुँघाने से सूर्योदय के साथ बढ़नेवाली आधाशीशी मिटती है।

उन्माद और अपस्मार—सिरस के बीज और करंज के बीजों को पीसकर अञ्जन करने से उन्माद, अपस्मार और नेत्ररोग मिटते हैं।

सर्पविष—इसके पत्ते या फूलों के रस की सफेद मिरचों में सात भावना देकर उन मिरचों को साँप के काटे हुए आदमी को खिलाने से और उन मिरचों का चूर्ण करके आँख में आंजने से साँप का विष उतर जाता है।

मेढक का विष—इसके बीजों को थूहर के दूध में पीसकर लेप करने से मेढक का विष उतरता है।

कर्ण पीड़ा—सिरस के पत्ते और आम के पत्तों के रस को कुनकुना करके कान में टपकाने से कर्णपीड़ा मिटती है।

अण्डकोषों की सूजन—इसकी छाल को पीसकर लेप करने से अण्डकोषों की सूजन मिटती है।

बन्द जुकाम—सिरस के बीजों को महीन पीसकर सुंघाने से बन्द जुकाम मिटता है।

नेत्रपीड़ा—इसके पत्तों के रस का अंजन करने से नेत्रपीड़ा मिटती है।

बवासीर—सिरस के बीजों के तेल का लेप करने से बवासीर में लाभ होता है।

पित्तशोथ—गर्मी के फोड़े, फुन्सी और पित्तशोथ पर इसके फूलों का लेप करने से लाभ होता है।

डाक्टर देसाई के मत से सिरस में पौष्टिक, वाजीकरण, ग्राही और विषनाशक धर्म रहते हैं।

इसके फूल वीर्य को गाढ़ा करने और वीर्य को स्तम्भन करने के लिए दिये जाते हैं। इसकी छाल का चूर्ण घी के साथ देने से धातुपौष्टिक और कामोद्दीपन का उत्तम कार्य करता है। इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से दाँत मजबूत होते हैं। इसके बीजों का लेप करने से और उनका चूर्ण पेट में खिलाने से गण्डमाला के रोग में बहुत लाभ होता है और वैद्य को यश मिलता है। रतौंधी के अन्दर इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से और इसके पत्तों के स्वरस को आँजने से बहुत लाभ होता है।

मात्रा—सिरस की छाल की साधारण मात्रा १ माशा और इसके बीजों की मात्रा चार माशे तक होती है।

सिरस पीला

नाम—संस्कृत—पीत शिरीष। हिन्दी—सिरस पीला। लेटिन—Albizza Odoratissima (एनबिझा ओडोरेटिस्सिमा)।

वर्णन—यह सिरस की एक सफेद जाति होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल को पीसकर लेप करने से कुष्ठ और हठीले व्रण में लाभ होता है। इसके पत्तों को घी में भूनकर देने से खाँसी मिटती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपयोग—कुष्ठ—इसकी छाल का लेप करने से कुष्ठ में लाभ होता है।

फोड़े—पुराने और कठोर फोड़ों पर इसका लेप किया जाता है।

घाव—सफेद सिरस की छाल का चूर्ण घाव पर भुरभुराने से घाव भर जाता है।

वातपीड़ा—सिरस के पत्ते, निर्गुण्डी के पत्ते और सहजने के पत्ते इन सबको पानी में औटाकर उनका बफारा देने से और उनको बाँधने से वातपीड़ा मिटती है।

दन्तपीड़ा—सिरस के बीजों की माला बनाकर पहिनाने से बच्चों को दाँत निकलने के समय कष्ट नहीं होता है।

सिरस सफेद (गुराड़)

नाम—हिन्दी | सफेद सिरस, बाड़ो, गारसो, गुराड़ इत्यादि। बङ्गला—कोराई। बम्बई—गुराई, तिहिरी, कराल्लु। दक्षिण—कनाल्लु। मराठी—किनहाई। इंग्लिश—White Siris। लेटिन—Albizza procera (अलबिझा प्रोसीरा)।

वर्णन—यह भी सिरस की एक जाति होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसक पत्ते कृमिनाशक होते हैं, इनका पुलटिस बनाकर व्रणों पर बाँधा जाता है।

सिरन

नाम—हिन्दी—सिरन, श्यामसुन्दर, पढ़िया। बङ्गाल—अमलुकी, चकुवा। बम्बई—उदाला। कोकण—फलारी। पंजाब—सिरस, ओई, कसीर। तामिल—सिलाई वागी। तेलगू—चिण्डागा। लेटिन—Albizza Stipulata (अलबिझा स्टिप्यूलेटा)।

वर्णन—यह भी एक सिरिस के वर्ग का हमेशा हरा रहनेवाला ऊँचा वृक्ष होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल का शीत निर्यास लोशन की तरह घाव, खुजली और दूसरे चर्मरोगों पर उपयोग में लिया जाता है।

सिन्दूर

नाम—संस्कृत—सिन्दूर, नागज, शृङ्गारभूषण, नागरक्त, शृङ्गारक। हिन्दी—सिन्दूर। बङ्गला—सिन्दूर। मराठी—शेन्दूर। गुजराती—सिन्दूर। अंग्रेजी—Red Lead (रेड लेड)। लेटिन—Plumbi Oxidum Rubram (प्लुम्बी आक्सिडम रूब्रम)।

वर्णन—सिन्दूर लाल रङ्ग का पदार्थ होता है जो सारे भारत में देवी-देवता के पूजन में तथा स्त्रियों के शृङ्गार में काम में लिया जाता है। यह नाग अथवा शीशे से बनाया जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सिन्दूर गरम, विसर्पनाशक, कुष्ठनाशक, कण्डूनिवारक, विषहारक, भग्नसंधानकारक, व्रण को शोधने वाला तथा भरनेवाला होता है। इसके और गुण सीसे के समान होते हैं।

सिन्दूर का शोधन—कांजी, नीबू का रस और गाय के दूध में तीन-तीन बार भावना देने से सिन्दूर शुद्ध हो जाता है।

सिराल

नाम—बम्बई—सिराल, अनसेल। बङ्गला—असार। तामिल—विसालम, कदाम्बु। लेटिन—Grewia Microcos (ग्रेविया मायाक्रोकास)।

वर्णन—यह झाड़ीनुमा वनस्पति पूर्वी बङ्गाल, आसाम, पश्चिमी प्रायद्वीप और सिलोन में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति बदहजमी, एक्जीमा, खुजली, चेचक, टाइफाइड ज्वर, अतिसार, उपदंश-जनित मुँह के व्रण इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों में लाभ पहुँचाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सीताफल

नाम—संस्कृत—सीताफल, गंडगात्र, वैदेहीवल्लभ, कृष्णबीज। हिन्दी—सीताफल। बंगला—आता, लूना, मेहा। मराठी—सीताफल। गुजराती—सीताफल, अनान। फारसी—शरीफा, काज। इंग्लिश—Sugar Apple (सुगर अपील)। लेटिन—Annona Spuamosa (अनोना स्क्वेमोसा)।

वर्णन—सीताफल सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है, यहाँ के जनसमाज मे यह बड़े चाव से खाया जाता है, अतः इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सीताफल तृप्तिजनक, रक्तवर्द्धक, स्वादिष्ट, शीतल, हृदय को हितकारी, बलवर्द्धक, मांसवर्द्धक तथा दाह, रक्तपित्त और वात को नष्ट करनेवाला होता है।

निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार सीताफल मधुर, शीतल, हृदय को हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, कफकारक, स्वादिष्ट, पौष्टिक और पित्तनाशक होता है।

इसका फल स्वादिष्ट, पौष्टिक, रक्त को बढ़ानेवाला, मांसपेशियों को दृढ करनेवाला, शीतल, दाह को दूर करनेवाला, हृदय के लिए उपशामक, पित्त को नष्ट करनेवाला और वमन को शान्त करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ विरेचक होती है। इसका फल मीठा, रक्त को बढ़ानेवाला, उत्तेजक, कफनिस्सारक और स्वादिष्ट होता है। इसके बीज पचने में भारी, ज्वर और विस्फोटक को पैदा करनेवाले, गर्भघातक और आँख में व्रण को पैदा करनेवाले होते हैं। इनको बालों में लगाने से ये सिर की जुंओं को मार देते हैं। मगर इनका रस भूल कर कर भी आँखों में नहीं पहुँचने देना चाहिये।

सीताफल की जड़ तीव्र विरेचक होती है और तीव्र आमातिसार में दी जाती है। इसी प्रकार यह मानसिक शक्तियों की गिरावट और पीठ की रीढ़-सम्बन्धी बीमारियों में भी दी जाती है। इसकी छाल संकोचक होती है और यह अतिसार को रोकने के लिए दी जाती है।

इसके पत्तों का निर्यास बच्चों की बढ़ी हुई एनी (Ani) में लाभदायक समझा जाता है। इसके पत्तों को कुचल कर, उनमें नमक मिलाकर, उनका पुलटिस बनाकर फोड़ों को पकाने के लिए उन पर बाँधा जाता है। इसका पका हुआ फल भी फोड़े को पकाने वाला माना जाता है और इसको कुचल कर इसमें नमक मिलाकर सांघातिक गठानों को जल्दी पकाने के लिए उन पर बांधते हैं। इसके बीजों में कसैला तत्त्व रहता है जो कृमियों को मार देता है। इसके कच्चे फलों का चूर्ण चने के आटे में मिलाकर कीड़ों को नष्ट करने के काम में लिया जाता है।

इसके बीजों का चूर्ण आंखों के लिए एक अत्यन्त घातक वस्तु है। इसके आंख में पड़ जाने से आँखें फूट जाती हैं, इससे आंखों को बहुत बचाना चाहिए।

भैंस के बच्चों के पेट में जो लम्बे २ केचुएँ पड़ जाते हैं वे सीताफल के पत्तों को पिलाने से मरकर निकल जाते हैं।

उपयोग—**गठान**—पके हुए सीताफल को कूटकर उसमें नमक मिलाकर बांधने से दुष्ट वायु, जल और पृथ्वी से पैदा हुई सांघातिक गठानें जल्दी पककर फूट जाती हैं।

कृमि—इसके बीजों का लेप करने से घाव वगैरह के कृमि मर जाते हैं। इसके कच्चे फल को सुखाकर, पीसकर चने के आटे में मिलाकर खिलाने और लेप करने से कीड़े मर जाते हैं।

काँच निकालना—इसके पत्तों की हिम या फांट से गुदा धोने से बच्चों की काँच निकलना बन्द हो जाता है।

प्रसूति कष्ट—इसके बीजों को पीस कर गर्भाशय के मुँह पर लगाने से बालक सुख से पैदा हो जाता है।

नारू—सीताफल के पत्तों को पीसकर उनकी टिकिया बनाकर बाँधने से नारू बाहर निकल आता है।

फोड़े—इसके गीले पत्तों की टिकड़ी बनाकर बिगड़े हुए फोड़ों पर बाँधने से वे अच्छे हो जाते हैं। सीताफल के पत्ते, तमाखू और बिना बुझे हुए चूने को पीसकर जिन घावों में कीड़े पड़ जाते हैं उन पर लेप करते हैं।

ज्वर—सीताफल की छाल का क्वाथ पीने से ज्वर छूटता है।

मिरगी—इसके बीजों की मगज को पीसकर कपड़े की बत्ती में रखकर उस बत्ती को जलाकर उसका धुँआ नाक में पहुँचाने से मिरगी के दौरे के समय में लाभ होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सीसा

नाम—संस्कृत—नाग, सीस, सुवर्णक, महाबल, चीन, पिष्ट इत्यादि। हिन्दी—सीसा, नाग। बङ्गला—सीसा। मराठी—शिसें। गुजराती—शीसुँ। तेलगू—शीस। फारसी—सुब। अरबी—रुसासुल। अंग्रेजी—Lead (लेड)। लेटिन—Plumbum (प्लम्बम्)।

वर्णन—सीसा एक खनिज द्रव्य होता है, यह बङ्ग या रांगे के समान मगर रङ्ग में उससे कुछ काला होता है। इसकी उत्पत्ति का वर्णन करते हुए प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि 'भोगी की महारूपवती और युवती कन्या को देखकर वासुकि सर्प कामोन्मत्त हो गया। उस सर्प से जो वीर्यपात हुआ उसीसे मनुष्य के सब रोगों को दूर करने वाले सीसे की उत्पत्ति हुई।

सीसा दो प्रकार का होता है। कुमार और समल। इनमें कुमार जाति का सीसा औषधि कार्य में उत्तम होता है। जो सीसा आग पर रखने से शीघ्र गल जाय, तौल में भारी हो, तोड़ने में काला और भीतर उज्ज्वल हो, जिसमें दुर्गन्ध हो और जो बाहर से काला हो वह उत्तम होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सीसा क्षयरोग, वातविकार, गुल्म, पाण्डुरोग; श्रम, कृमि, कफ, शूल, प्रमेह, खांसी, संग्रहणी और गुदा के रोगों में लाभदायक होता है।

शीशे के गुण प्रायः वङ्ग या रांगे के तुल्य होते हैं। यह प्रमेह को दूर करनेवाला, व्याधि-विनाशक, जीवन-शक्तिवर्द्धक, जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला, कामोद्दीपक, बलवर्द्धक और सौ हाथियों के समान बल देनेवाला होता है।

अशुद्ध या कच्चा नाग खाने से कुष्ठ, गुल्म, कण्डू, प्रमेह, मंदाग्नि, सूजन, भगन्दर इत्यादि उपद्रव पैदा होते हैं।

सीसे को शुद्ध करने की विधियां—सीसे की शुद्धि बिलकुल बंग की शुद्धि की तरह होती है। बंग के प्रकरण में लिखी बंग शुद्धि के अनुसार ही तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी और कुलथी का काढ़ा इन पाँच चीजों में सीसे को गला २ कर सात २ बार बुझाना चाहिए। बंग की तरह सीसा भी जलीय वस्तुओं में बहुत उछलता है इसलिए बंग ही की तरह इसका भी शोधन 'पिठर यन्त्र' में करना चाहिए।

विशेष शुद्धि—सामान्य शुद्धि के पश्चात् त्रिफला का काढ़ा, घीगुवार का रस और हाथी के मूत्र में सात २ बार पिठर यन्त्र में बुझाने से सीसे की विशेष शुद्धि हो जाती है। यह खयाल रखना चाहिए कि सीसे के तपाने से लिए अगर खैर या नीम की लकड़ी ली जावेगी तो विशेष उपयोगी होगा।

सीसे को भस्म करने की विधियां—पहली विधि—आध सेर शुद्ध सीसे को लोहे की कड़ाही में रखकर अग्नि के ऊपर रक्खें, जब सीसा पिघल जाय तब उसमें आधा सेर शोधन किया हुआ या हिङ्गुल से निकाला हुआ पारद डाल दें, दोनों के मिल जाने से एक प्रकार की पिट्ठी बन जावेगी, उस पिट्ठी को दो दिन तक नीम्बू के रस में घोटें और फिर पानी से धोकर खटाई को निकाल दें। इस पिट्ठी को समान भाग तीसरी गन्धक (मैनशिल) शुद्ध की हुई डालकर कज्जली कर लें। इस कज्जली को किनारे पर तारों से बन्धे हुए और कपड़मिट्टी किए हुए मिट्टी के कुण्डे में अथवा लोहे की कडाही में भरकर रोटी करने के छोटे चूल्हे पर रखकर मन्दाग्नि से पकावें और उसके ऊपर थोड़ा-थोड़ा सफेद गुञ्जा या चिरमिटी का क्वाथ भी डालते जावें।

जब मन्दी-मन्दी आँच से धीरे धीरे नीम के डण्डे से चलाते हुए साढ़े पाँच सेर चिरमिटी का क्वाथ कज्जली में सूख जाय तब साढ़े पांच सेर अडूसे के पत्तों का स्वरस या अडूसे का क्वाथ भी उस कज्जली पर थोड़ा-थोड़ा करके जला दें, उसके पश्चात् साढ़े पांच सेर नीम के पत्तों का स्वरस भी उस पर जला दें। तत्पश्चात् उस कज्जली को खरल में डालकर घीगुवार के रस में घोटें। घोटते-घोटते जब कज्जली बिलकुल सूख जाय तब उस कज्जली को नलिका डमरूयन्त्र में रखकर तीन पहर की आँच दें। उसके पश्चात् यन्त्र के स्वांग-शीतल होने पर नली के चारों तरफ लगे पारद को अलग निकाल लें और नलिका डमरू यन्त्र के तल भाग में जमी हुई सीसेकी भस्म को अलग निकाल लें।

इस भस्म को कपड़मिट्टी किये हुए मिट्टी के कुण्डे में रखकर तालादि-भस्मकरी भट्ठी* पर चढ़ा कर अग्नि दें और ऊपर सफेद गुञ्जा का चूर्ण भी थोड़ा-थोड़ा भुरभुराते जावें और नीम के डण्डे से चलाते जावें। इस प्रकार

---

* इन सब भट्ठियों और यन्त्रों का वर्णन रसायनसार या और किसी रस ग्रन्थ में देखना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आध सेर चूर्ण जल जाने पर उस भस्म को कपड़े में छानकर शीशी में भर लें। जो कुछ मोटा दरदरा अंश कपड़े के ऊपर बच जाय उसे भी कूट कर कुंडे में डाल कर भट्टी पर रख कर तपावें और नीम के डण्डे से चलाते जावें तथा थोड़ा-थोड़ा सफेद चिरमिटी का चूर्ण भी उस पर डालते जावें। इससे वह भी महीन हो जावेगा।

यह सीसे की भस्म भूरे रंग की और अत्यन्त उत्तम होती है। इसकी एक रत्ती से दो रत्ती तक की मात्रा शहद या उचित अनुपान के साथ लेने से शरीर में बल, ओज तथा कान्ति बढ़ती है। वीर्य्य पुष्ट होता है, स्त्रियों से रमण करने की तथा उन्हें सन्तुष्ट करने की शक्ति बढ़ाती है तथा खाँसी, शूल, मन्दाग्नि, कृमि, क्षय, बवासीर, कफ रोग, वातरोग और शुक्र के रोग नष्ट होते हैं।

नागभस्म की दूसरी विधि—बबूल के कोयलों की आग जलाकर उस पर ताम्बे का बर्त्तन रक्खें, जब वह बर्त्तन तपकर सुर्ख हो जाय तब उसमें शुद्ध किया हुआ सीसा डाल दें, जब वह सीसा गल जाय तब उस पर केवड़े और तुलसी को कूटपीस कर तैयार किया हुआ चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालते जायँ और नीम के डण्डे से सीसे को घोटते जायँ, इस प्रकार कोई आधे घण्टे में हलदी के रंग की भस्म तैयार होगी। इस भस्म को खरल में डालकर नीम्बू के रस में खरल करना चाहिये और फिर टिकिया सी बनाकर सराव सम्पुट में रखकर दो गज पुट की आग देनी चाहिए।

जब दो बार नीम्बू के रस में खरल करके दो गजपुट की आँच लग जाय, तब दो बार बनतुलसी के रस में खरल करके दो गजपुट में उसे और फूँकना चाहिए। इसी प्रकार दो गजपुट जसवन्ती के रस में, दो गजपुट भाँगरे के रस में, दो गजपुट गोदन दूधी के रस में और दो गजपुट घीगुवार के रस में देने पर उत्तम सिन्दूर के रंग की भस्म तैयार होती है।

सीसा भस्म की तीसरी विधि---शोधा हुआ सीसा एक सेर एक मिट्टी के ठीकरे में रखकर आग पर रक्खो, जब सीसा गल जाय तब उसको केवड़े के डण्डे से चलाओ, जब तक भस्म न हो जाय उसे डण्डे से घोटना बन्द मत करो, जब भस्म हो जाय तब उस पर पिसा हुआ कलमी शोरा मुट्ठी से थोड़ा-थोड़ा डालते जाओ और लोहे की कलछी से चलाते जाओ, तब शोरा खतम हो जाय दूर हटकर घोटो क्योंकि अब शोरा एकदम जल उठेगा। जब शोरा जल उठे ठीकरे को उतार लो और उसमें भस्म की चाकू से छील-छीलकर एक बर्त्तन में इकट्ठी कर लो।

इसके बाद उस भस्म को खरल में डालकर ऊपर से बड़ की जटा का अर्क और केवड़े की जड़ का अर्क डाल-डाल कर घोटो फिर टिकिया बनाकर धूप में सुखा लो। फिर इसमें से पाव भर टिकिया को सरावसम्पुट में रखकर चार सेर कण्डों की आग में फूँक दो, अगर पीले रंग की भस्म तैयार हो जाय तब तो ठीक है अन्यथा और एक बार उसे बड़ की जटा से और केवड़े के अर्क में घोटकर सराव-सम्पुट में रखकर फूँक दो।

उपरोक्त भस्म यूनानी तरीके की है जो हकीम खूबचन्द की लिखी हुई है। हकीम खूबचन्द का कहना है कि यह बहुत उत्तम भस्म होती है, इसकी मात्रा चार चावल की होती है।

१—इसकी एक मात्रा को आधा पाव अनार के रस के साथ देने से गिरता हुआ खून बन्द हो जाता है।

२—इस सीसा भस्म को दो तोले अर्क गिलोय और एक तोला शहद के साथ लेने से जुकाम आराम होता है।

३—एक मात्रा इस सीसा भस्म को विहीदाना के लुआब के साथ खाने से सुजाक आराम होता है।
(चिकित्सा चन्द्रोदय)।

सीसा भस्म करने की आसान विधि—कपड़मिट्टी किये हुए के कूण्डे में शुद्ध सीसे को डालकर आग पर चढ़ावें, जब पिघल कर सीसा खूब तप्त हो जावे तब आक की जड़ के डण्डे से उसे जल्दी जल्दी घोटें, अथवा घीगुवार की जड़ के डण्डे से घोटें और नीचे तेज आँच जलती रक्खें। ऐसा करने से पाव भर सीसे की दोपहर की आँच में भस्म तैयार हो जायगी। इस भस्म को कपड़े में छान लें। इस हालत में भी कई वैद्य लोग इसका उपयोग करते हैं।

मगर यदि इसे विशेष प्रभावशाली बनाना हो तो इस भस्म में से पाँच तोला भस्म लेकर उसे ढाई तोला अफीम के साथ मिलाकर आक के दूध में अथवा आक के पत्तों के रस में खरल करें फिर उसकी टिकिया बनाकर धूप में सुखा लें और उन टिकियों को सरावसम्पुट में रखकर वराह पुट में फूँक दें। इस प्रकार दो बार, चार बार, छः बार फूँकें। ऐसा करने से यह भस्म भी वहुत प्रभावशाली हो जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नागेश्वर बनाने की विधि—एक सेर शुद्ध सीसे को मिट्टी के बर्त्तन में रख कर आग पर चढ़ावें। जब वह गल जाय तब उस पर इमली की अन्तर्छाल और पीपल की अन्तर्छाल का चूर्ण थोड़ा भुरभुराते जाँय और लोहे की कलछी से चलाते जायें। ऐसा करते करते जब उसकी भस्म हो जाय तब उसके बराबर शुद्ध मैनसिल लेकर दोनों को खरल में डाल कर कांजी के साथ खूब घोटकर टिकिया बना लें और इन टिकियाओं को सरावसम्पुट में बंन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार साठ गजपुट में फूँकने पर नागेश्वर तैयार हो जाता है।

नाग रसायन—सीसे की भस्म चार तोले, सुवर्णमाक्षिक भस्म २ तोले, ताम्रभस्म एक तोला, रूपामाखी भस्म १ तोला, कान्त लोह भस्म १ तोला, शतपुटी अभ्रक भस्म १ तोला और स्फटिक मणि की भस्म १ तोला, इन सातों भस्मों को त्रिफला के काढ़े में घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लें उसके पश्चात् इन टिकियाओं को सरावसम्पुट में रख तीस उपले के कण्डों की आँच में फूंक दें। इस प्रकार तीस बार त्रिफले के काढ़े में घोटकर तीस ही बार सरावसम्पुट में इसे फूंके। इसके बाद सराव में से इस भस्म को निकाल कर, ग्यारह तोले त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपर) का चूर्ण और ग्यारह तोले बायविडंग के चूर्ण के साथ इस औषधि को खरल में घोट कर शीशी में भर लें।

इस नाग रसायन की मात्रा दो से चार रत्ती तक की है। इसको शहद, घी अथवा भिन्न २ अनुपानों के साथ लेने से अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं। खास कर सब प्रकार की वात व्याधियाँ, धंनुर्वात, कफरोग, बहुमूत्र, खाँसी, क्षयरोग, पाण्डुरोग, श्वास, शीतज्वर, आमरोग, संग्रहणी, जलविकार (भिन्न भिन्न स्थानों के पानी से होने वाले-विकार), मन्दाग्नि, शोथ इत्यादि रोगों में उचित अनुपान के साथ देने से यह काफी लाभ पहुँचाता है। लेकिन वमन-विरेचन से पेट को साफ करके इसका सेवन करना चाहिए।

अशुद्ध सीसाभस्म के विकारों की शान्ति---एक रत्ती सुवर्णभस्म, एक तोला मिश्री और एक तोला बड़ी हरड़, तीनों चीजों को मिलाकर तीन दिन तक दोनों समय खाने से अशुद्ध नाग भस्म के विकार शान्त होते हैं।

मात्रा—सीसा भस्म की मात्रा चार चावल से दो रत्ती तक होती है।

उपयोग—अजीर्ण—सोंठ और सौंफ के चूर्ण के साथ सीसाभस्म को खाने से अजीर्ण मिटता है।

गुल्मरोग—सोंठ और संचरनोन के चूर्ण के साथ सीसाभस्म को लेकर ऊपर से मकोय का रस पीने से गुल्म रोग मिटता है।

ज्वर—काली मिरच और बताशे के साथ नागभस्म का सेवन करने से नवीन ज्वर, जीर्ण ज्वर और विषम ज्वर में लाभ होता है।

कामोद्दीपन—मिश्री, जायफल और पीपर के चूर्ण के साथ नागभस्म को लेने से बल और कामशक्ति बढ़ती है।

सिर दर्द—सोंठ के चूर्ण और पुराने गुड़ के साथ नागभस्म को खाने से सिर का दर्द और कमर का दर्द मिटता है।

वमन—सोंठ और पुराने गुड़ के साथ नागभस्म को लेने से वमन शान्त होती है।

तिल्ली और यकृत के रोग—नागभस्म को शहद और पीपल के साथ लेने से तिल्ली और यकृत के रोग मिटते हैं।

प्रदर—पीपल के चूर्ण और काकमाची के रस से नागभस्म को लेने से घोर प्रदररोग मिटता है।

प्रमेह—गिलोय के स्वरस और शहद के साथ अथवा हल्दी, आँवला और शहद के साथ नागभस्म को लेने से सब प्रकार के प्रमेह मिटते हैं।

सुरिंद (गेवा)

नाम—मराठी—सुरिन्द, सूरन, गेवा, फुंगली, हुरा। बम्बई—गेवा, गऊर, गंगवा, गेरिया, गोरिया। कनाड़ी-हरो, हुरा। उड़िया—गुन। तैलगू—चिल्ल। तामिल—तिल्ले चेदि। इंग्लिश—Blinding tree (ब्लाइंडिंग ट्री) लेटिन—Excaecaria Agallocha (एक्सीकेरिया एगेलोचा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का विषैला और हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष होता है। इसके हर एक अंग में सफेद रंग का बहुत तीक्ष्ण स्वाद वाला दूधिया रस रहता है। इसके पत्ते सफेद कूड़े के पत्तों के समान मगर उनसे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुछ मोटे, लम्बे और मुलायम रहते हैं। पत्तों के डंठल लम्बे और लाल रंग के रहते हैं। इसके फूल पीले और सुगन्धित, छाल ऊबड़-खाबड़ और लकड़ी सफेद और मुलायम होती है। इसकी जड़ के टुकड़े नरम, हलके, लाल और बूच [काग] की लकड़ी के समान होते हैं। इनको पानी में डालने से ये पानी का शोषण कर लेते हैं मगर बाहर से सूखे नजर आते हैं। चाकू से चीरा लगाने पर इनका शोषण किया हुआ पानी बाहर निकल आता है। इस वृक्ष की छाल और इसका दूध औषधि प्रयोग में काम आता है। यह वनस्पति सुन्दरवन, वर्मा और पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होती है।

इसका दूधिया रस जो कि इसकी छाल से निकलता है ताजी हालत में बहुत तीक्ष्ण और आँखों को हानि पहुँचाने वाला होता है, इसीलिए इसको अंग्रेजी में ब्लाइंडिंग ट्री कहते हैं। यह तीव्र विरेचक और त्वचा पर लगाने से त्वचा में दाह पैदा करनेवाला होता है। स्वयं विषैला होने पर भी यह दूसरे विषों को नष्ट करता है। बिच्छू के डंक पर इसका लेप करने से वेदना कम हो जाती है। रक्तपित्त, व्रण और दूसरे चर्म रोगों पर इसको तेल में मिला कर लगाते हैं और इसके पत्तों के काढ़े से व्रणों को धोते हैं। खांसी में इसका दूध चावल के आटे में मिलाकर गोली बांधकर दिया जाता है आँख में अगर यह चला जाय तो इसकी वेदना को शान्त करने के लिए आँखों में दही आँजना चाहिए और दही की पट्टी आंखों पर बांधना चाहिए। सर्पविष को दूर करने के लिए इसकी छाल का रस दिया जाता है।

इसकी जड़ों का नीचे का हिस्सा जो मुलायम, हलका, लाल और काग की तरह होता है। वह पश्चिमी भारत के औषधि-विक्रेताओं के द्वारा 'तेजबल' के नाम से बिकता है और कामोद्दीपक औषधि की तरह काम में लिया जाता है।

फिजी द्वीप के अन्दर यह वनस्पति गलित कुष्ठ की चिकित्सा में काम में ली जाती है। वहां पर इसको काम में लेने का तरीका भी बड़ा विचित्र है। पहले रोगी का शरीर हरे पत्तों से रगड़ा जाता है, फिर उसको एक छोटे कमरे में ले जाकर उसके हाथ, पैर बांध देते हैं और इस वृक्ष की लकड़ी के टुकड़ों से थोड़ी आग जलाते हैं जिससे गहरा धुआं निकलता है, उस अग्नि से कुछ ऊपर उस बीमार को टांग देते हैं और कुछ घण्टों तक उस जहरीले धुएँ में में उसे रखते हैं। इस दशा में रोगी को बेहद वेदना और त्रास होता है वह बेहोश हो जाता है। खूब धुआं लग जाने पर उसको वहाँ से निकालते हैं और उसके शरीर पर जमे हुए क्षार को छीलकर निकालते हैं जिससे उसकी चमड़ी भी छिल जाती है। इस चिकित्सा से गलित कुष्ठ के कुछ केस आराम हो जाते हैं मगर बहुत से इस अग्नि परीक्षा में ही मृत्यु के मुख में चले जाते हैं।

सुपारी

नाम—संस्कृत—पूगीफल, पूगी, उद्वेग, घोण्टाफल, गुवाक इत्यादि। हिन्दी—सुपारी। बंगला—सुप्परी, गुआ। गुजराती—शोपरी, होपारी, पोफल। मराठी—सुपारी, पुंग, पोफली। उर्दू—सुपारी। फारसी—पोपल, गिर्द चोब। इंग्लिश—Betel Nut Tree (बेटल नट ट्री)। लेटिन—Areca Catechu (एरका कटेचू)।

वर्णन—सुपारी के वृक्ष ताड़ और नारियल की जाति की तरह बहुत ऊँचे और एक दम सीधे होते हैं। इसका वृक्ष खम्भे के समान एकदम सीधा चला जाता है। इसके पत्ते बड़े २ नारियल के पत्तों के समान होते हैं। इसके ऊपर सुपारी के फल लगते हैं। इन फलों को छीलने से भीतर से सुपारी निकलती है। सुपारी जहाजी, मानकचन्दी, श्रीवर्द्धिनी इत्यादि अनेक प्रकार की होती है। सुपारी के वृक्ष बंगाल, आसाम, सिलहट, पश्चिमीघाट, मैसूर, कनारा, मलाबार इत्यादि कई प्रान्तों में होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सुपारी भारी, शीतल, रूखी, कसैली, कफ-पित्त-नाशक, मोहकारक, दीपन, रुचिकारक और मुख को शुद्ध करनेवाली होती है। कच्ची सुपारी भारी, अभिष्यन्दी, मन्दाग्नि-कारक और दृष्टिशक्तिविनाशक होती है। औटाकर तैयार की हुई सुपारी जिसका मध्यभाग दृढ़ हो उत्तम और त्रिदोष-नाशक होती है।

सुपारी प्रथम अर्थात् कच्ची अवस्था में विष के समान हानिकारक होती है, मध्यम अवस्था में भेदक और दुष्पच होती है और सूखी हुई हालत में अमृत के समान उपकारी और रसायन होती है। इस कारण प्रथम और द्वितीय अवस्था को छोड़कर हमेशा तृतीय अर्थात् सूखी अवस्था में इसे ग्रहण करना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुपारी मोहकारक, स्वादिष्ट, रुचिजनक, कसैली, रूखी, सारक, मधुर, भारी, पथ्य, दीपन, किञ्चित्, चरपरी, मुँह के जायके को सुधारनेवाली तथा वमन, क्लेद, त्रिदोष, मल, वात, कफ, पित्त और दुर्गन्ध को दूर करनेवाली होती है। कच्ची सुपारी कण्ठशोधक, अभिष्यन्द, सारक, भारी, दृष्टिशक्तिनाशक, मन्दाग्निकारक तथा रक्तविकार, मुँह की दुर्गन्ध, पित्त, आम, कफ, आध्मान और उदर रोग को नाश करती है। सूखी हुई सुपारी रुचिकारक, पाचक, रेचक, स्निग्ध, बादी तथा कण्ठ रोग और त्रिदोष को नाश करने वाली होती है। बिना पान की सुपारी खाने से सूजन और पाण्डुरोग उत्पन्न होता है।

आन्ध्र देश में उत्पन्न होने वाली सुपारी पचने में मधुर, किंचित् अम्ल, कसैली तथा कफ-वातनाशक और मुख में जड़ता पैदा करने वाली होती है। चम्पापुर की सुपारी पाचक, अग्निदीपक, बलवर्द्धक, रसयुक्त और कफनाशक होती है। गुहागरी सुपारी मधुर, कसैली, हलकी, चरपरी, पाचक, विशद, मलरोधक तथा आफरा और वात को नष्ट करने वाली होती है।

सुपारी के पेड़ का गोंद मोहजनक, शीतल, भारी, पचने में उष्ण, पित्तकारक, चरपरा, खट्टा और वातनाशक होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से सुपारी पाचक, संकोचक, मूत्रल, हृदय को शक्ति देने वाली, ऋतुस्राव-नियामक और आँखों की सूजन, भ्रम, पुरातन प्रमेह और पीब को नष्ट करनेवाली होती है।

सुपारी के फल का चूर्ण ५ रत्ती से लेकर एक माशे तक की मात्रा में निर्बलता से होने वाले अतिसार में तीन २ चार २ घण्टे के अन्तर से दिया जाता है। मूत्रसम्बन्धी बीमारियों में भी यह बहुत लाभदायक होता है। इसमें कामोद्दीपक तत्त्व भी रहते हैं। इसके सूखे फल के टुकड़ों को चूसने से शरीर में उत्तेजक और आनन्ददायक प्रभाव होता है।

सुपारी स्नायुजाल को शक्ति देनेवाली और ऋतुस्राव-नियामक होती है और इसका एक लोशन एक संकोचक द्रव्य की तरह आँखों में डालने के काम में लिया जाता है। यह आँतों को शिकायत और खराब व्रणों के अन्दर भी उपयोग में ली जाती है।

सुपारी के कोमल पत्तों का रस निकालकर मर्दन करने से कमर की स्नायु पीड़ा मिटती है और इसकी जड़ का काढ़ा होठ के व्रण को मिटानेवाला माना जाता है।

सुपारी के चूर्ण का मंजन करने से अथवा इसके छोटे २ टुकड़े मुँह में रखने से मसूड़ों से रुधिर का निकलना बन्द हो जाता है। इसके चूर्ण की पोटली बाँधकर योनि में रखने से योनि से पानी का बहना बन्द हो जाता है। दूध के साथ सुपारी के सवा तोले चूर्ण की फक्की देने से पेट के गोल और चपटे कृमि (Tape worms) मर जाते हैं। इसके चार माशे चूर्ण को मक्खन के साथ देने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

सीलोन के अन्दर सुपारी को घिसकर जखम के ऊपर लगायी जाती है। यह मसूड़ों को शक्ति देने वाली मानी जाती है। पशुओं के पेट के कीड़ों को नष्ट करने के लिये भी यह दी जाती है।

मलाया की स्त्रियाँ छोटी उमर में गर्भ रह जाने पर सुपारी के हरे और कोमल पत्तों को गर्भघातक ओषधि की तरह काम में लेती हैं। चीन में सुपारी पौष्टिक, संकोचक और कृमिनाशक मानी जाती है। इसके छोटे टुकड़ों का काढ़ा बनाकर आँतों की अनेक प्रकार की शिकायतों को दूर करने के लिये पिलाया जाता है।

कम्बोड़िया में सुपारी के पत्ते खाँसी को मिटाने के लिए पिलाये जाते हैं और कटिवात को दूर करने के लिए इनका बाहरी लेप किया जाता है। इसका फल अफीम के साथ अतिसार को दूर करने के लिए दिया जाता है और इसकी जड़ यकृत की बीमारियों में उपयोगी मानी जाती है।

कोमान के मतानुसार कोमल सुपारी छोटी मात्रा में मृदुविरेचक होती है।

उपयोगः—**वमन**—सुपारी और हल्दी के चूर्ण में शक्कर मिलाकर फक्की देने से वमन बन्द होती है।

क्षौद्र प्रमेह—सुपारी और खैर के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से क्षौद्र प्रमेह मिटता है।

उपदंश—सुपारी का चूर्ण भुरभुराने से उपदंश का घाव मिटता है।

मुखपाक—सुपारी और बड़ी इलायची की भस्म को मुंह में भुरभुराने से मुँह के छाले मिटते हैं।

रजरोग—सुपारी का पाक खाने से स्त्रियों के योनि और रज सम्बन्धी बहुत से रोग मिटते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुहागा

नाम—संस्कृत—टंकणक्षार, लोहद्रावी, स्वर्णपाचक, सौभाग्य इत्यादि। हिन्दी—सुहागी, सुहागा। बङ्गला-सोहागा। मराठी—स्वागी खार, टंकण खार। गुजराती—टंकण खार, टंकण फूलियो। पंजाबी—सुहागा। तेलगू—वोलियागारसु। फारसी—तीगार। अरबी—जबदुल बूरक। इंग्लिश—Boreax (बोरेक्स)। लेटिन—Soda Biboras (सोडा बाइबोरास)।

वर्णन—सुहागा यह एक खनिज द्रव्य है। यह कची और अशुद्ध हालत में नैपाल से बहुत तादाद में आता है और फिर यहाँ पर तैयार किया जाता है। यह सफेद रंग का गंध रहित और रवेदार होता है। इसका स्वाद नमकीन या खारा होता है। सुनार लोग इसको सोना गलाने के काम में लेते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सुहागा कटु, उष्ण तथा कफ, स्थावर विष, खाँसी और श्वास को दूर करने वाला होता है।

भाव प्रकाश के मत से सुहागा अग्निवर्द्धक, रूखा, कफनाशक और वात-पित्त को पैदा करने वाला होता है।

सुहागा तीक्ष्ण, द्रावण, धातु को गलाने वाला, भेदक तथा विष, ज्वर, गुल्म, आम, शूल, वात और कफ को नष्ट करता है।

सुहागा भेदक, रूक्ष, कटु, अग्निदीपक, पित्तजनक, उष्ण, वातवर्द्धक, तिक्त, तीक्ष्ण, खारा, धातु को पतला करनेवाला तथा ज्वर, वात, कफ, जंगम विष, स्थावर विष, वमन, वातरक्त, खाँसी और श्वास को हरनेवाला होता है।

सुहागे को शुद्ध करने की विधि—सबसे पहले सुहागे को लेकर कांजी में छोड़ दें एक रात के पश्चात् निकाल कर रौद्र यंत्र में पचावे। फिर उसे मनुष्य के मूत्र में डाल कर गोमूत्र में डाले, फिर सायंकाल को निकाल कर जम्भीरी नीम्बू के रस में डाले, उसमें से निकाल कर नारियल के पात्र में रख कर काली मिर्च के चूर्ण से युक्त शीतल जल से धोवे, इस क्रिया से सुहागा शुद्ध हो जाता है। (शा० नि०)

मगर इसको शुद्ध करने की सरल विधि इसको अङ्गारे पर रख कर फूला पाड़ लेने की है, इस क्रिया से सुहागा सब रोगों में देने योग्य शुद्ध हो जाता है।

सुहागा कृमिनाशक, ऋतुस्राव-नियामक और मूत्रल होता है।

सुहागा हलका, कृमिनाशक होता है। इसको बड़ी मात्रा में लेने से दस्त और वमन होते हैं। पेट के अन्दर आँतों में यह बहुत जल्दी घुल जाता है मगर आँतों की सड़ाइन पर इसका कुछ असर नहीं होता। यह पेशाब के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है, निकलते समय यह पानी और यूरिया (urea) को बढ़ाता है। सुहागे को देने से पेशाब अल्केलाइन होता है, उसमें एसिड की मात्रा कम होती है। मूत्र पिण्ड के कृमियों को भी यह नष्ट करता है। थोड़ी मात्रा में सुहागी को देने से यह पेशाब को स्वच्छ करती है। लगातार इसको छोटी मात्रा में लेने से यह पेशाब में एलब्यूमिन को बढ़ाती है।

मज्जातन्तुओं के ऊपर सुहागे का उपशामक असर होता है। इसके लेने से मासिक धर्म का परिमाण बढ़ता है। यह गर्भाशय के संकुचित होने की क्रिया को बढ़ाता है।

सुहागे के पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं। स्वरभंग रोग में इसकी गोली बनाकर मुँह में रखने से बहुत लाभ होता है। सुहागी और काली मिरच मिलाकर लगाने से मसूढ़ों के क्षत अच्छे होते हैं।

पेट में गैस होने से जो अग्निमांद्य हो जाता है उसमें सुहागा बहुत लाभदायक होता है। गन्दे पेशाब को भी यह साफ करता है। अतिसार और रक्तातिसार में इसका उपयोग सन्देहात्मक है। प्रसूति के समय पीड़ा बढ़ाने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। मृगी रोग में इसको ब्रोमाइड के साथ लेने से लाभ होता है।

उपयोग—फोड़े—फुन्सी—सुहागे को जल में घोल कर उस जल से फोड़े-फुन्सियों को धोने से वे अच्छे हो जाते हैं।

तिल्ली की वृद्धि—घीगुवार के गूदा पर अशुद्ध सुहागा भुरभुरा कर खाने से तिल्ली कटती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुह के छाले—बच्चों के मुँह में जो सफेद छाले हो जाते हैं उन पर सुहागा भुरभुराने से वे आराम हो जाते हैं। इसको जल में औटाकर कुल्ले करने से मुखपाक मिटता है।

दाद—निम्बू के रस में सुहागा मिलाकर लगाने से दाद आराम होता है।

मंदाग्नि—भोजन के एक घण्टे पश्चात् पाँच रत्ती से एक माशा तक सुहागा थोड़े जल के साथ लेने से मन्दाग्नि मिटती है।

अम्लपित—पाँच रत्ती फुलाया हुआ सुहागा कुछ दिनों तक खाने से अम्लपित्त मिटता है।

रक्त का बहना—सुहागे के जल में कपड़ा तर करके घाव पर बाँधने से रुधिर का निकलना बन्द हो जाता है अथवा सुहागे के चूर्ण को भुरभुराने से भी रुधिर का बहना बन्द हो जाता है।

गजचर्म—जिस रोग में चमड़ी मोटी पड़ जाय, उसका रङ्ग पलट जाय और खुजली बहुत चलने लगे वहाँ पर सुहागे का पानी अथवा सुहागे का तेजाब लगाने से लाभ होता है।

खाँसी—बच्चों की खाँसी में फुलाये हुए सुहागे को २ रत्ती की मात्रा में थोड़े से दूध के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

योनि के फोड़े फुन्सी—योनि और मूत्रनाली के फोड़े-फुन्सियों को मिटाने के लिए सुहागे के जल का प्रयोग उत्तम होता है।

मासिक धर्म की रुकावट—सुहागे का प्रयोग करने से मासिक धर्म की रुकावट मिटती है।

प्रसूति कष्ट—प्रसूति के समय का कष्ट मिटाने के लिए अपामार्ग की जड़ के क्वाथ में सुहागा डालकर पिलाना चाहिए।

रक्त प्रदर—गर्भाशय से बहते हुए रक्त को रोकने के लिए सुहागे के जल में कपड़ा तर करके योनि के भीतर रखना चाहिए।

स्तन के घाव—स्त्रियों के स्तन के घाव सुहागे के पानी से धोने से अच्छे हो जाते हैं।

दंत पीड़ा—सुहागे को पीसकर थोड़े से मोम में मिलाकर दाँत की कोचर में रखने से दाँत की पीड़ा मिटती है।

मंजन—फुलाये हुए सुहागे में मिश्री मिलाकर उसका मंजन करने से दाँत दृढ़ होते हैं।

कर्णरोग—सुहागा और सिरका मिलाकर गर्म करके कान में डालने से कान के कीड़े मरते हैं।

अण्डकोषों की सूजन—दो रत्ती फुलाये हुए सुहागे की पुराने गुड़ में गोली बनाकर उसको प्रातःकाल खाकर ऊपर से थोड़ा घी पी लें। ऐसा कुछ दिन करने से अण्डकोषों की सूजन मिटती है। पथ्य में बिना नमक का भोजन करना चाहिए।

सर्पविष—सुहागे को पानी के साथ पिलाने से सर्पविष में लाभ होता है। स्थावर विषों के बिकार को शान्त करने के लिए सुहागे को घी में मिलाकर देना चाहिए।

नारू—(१) सुहागे को गिलोय के रस में मिलाकर पीने से नारू मिटता है।

(२) तीन माशे फुलाये हुए सुहागे में तीन माशे हींग मिलाकर चूर्ण करके सात पुड़िया बना लेना चाहिए। ये सातों पुड़िया सात दिन तक खाने से नारू मिट जाता है।

(३) दस माशा सुहागा गुलाब के फूलों के तेल के साथ तीन दिन में खाने से और पथ्य में घी इत्यादि स्निग्ध पदार्थों को लेने से नारू गल जाता है।

(४) जहरी कुचले को गाढ़ा २ घिसकर उसकी बताशे के बराबर बून्द नारू पर डाले और उस पर एक चुटकी सुहागा और एक चुटकी सिन्दूर डालकर ऊपर से अरण्डी के पत्ते रखकर पट्टी चढ़ा दें। ऐसी तीन दिन तक तीन पट्टी चढ़ाने से नारू अच्छा हो जाता है।

दमा—तीन तोले फुलाये सुहागे को चार तोले शहद में मिलाकर उसमें से तीन उगली भर अवलेह प्रतिदिन चाटने से दमा मिटता है।

तिल्ली—एक भाग भुना हुआ सुहागा और तीन भाग राई को महीन पीसकर एक २ माशे की मात्रा में दिन में दो बार लेने से नारू गल जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुँह की झांई—सुहागे को चन्दन के साथ पीसकर मुँह पर लेप करने से मुंह की झांई मिटती है।

सर्पविष—१॥ तोले सुहागे को फुलाकर घी में मिलाकर पिलाने से सर्पविष उतरता है। बच्छनाग के विष में भी यह लाभ पहुँचाता है।

सुरिंजान

नाम—हिन्दी, यूनानी—सुरिंजान। लेटिन—Colchicum Variegatum (कोलचिकम व्हेरिगेटम)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है जो कश्मीर में तथा बड़ी तादाद में ईरान में पैदा होता है। इसके कन्द के टुकड़े ईरान से भारतवष में आते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं एक सुरंजान तल्ख (कड़ुवा) और दूसरी सुरिंजान शीरीं (मीठा)। इसमें से सुरिंजान तल्ख विशेष रूप से औषधि के काम में आता है। यह बाहर से भूरे रङ्ग का और भीतर से सफेद रंग का होता है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसकी जड़ खराब स्वादवाली, कड़वी, मृदुविरेचक, कामोद्दीपक, सूजन को बिखेरने वाली तथा मस्तिष्क की गरमी का दूर करनेवाली होती है। पुराने बवासार के मस्सों पर इसका लेप करने से उनकी वेदना शान्त होती है। मस्तकशूल, गठिया, संधिवात और तिल्ली तथा यकृत के रोगी में यह बहुत मुफीद है।

सुरंजान की क्रिया बिलकुल 'कोलचिकम' के समान होती है। यह पाचननलिका को प्रत्यक्ष उत्तेजना देता है। जिससे वमन और दस्त होते हैं। यकृत को उत्तेजना देकर यह पित्त संचालन की क्रिया को व्यवस्थित करता है। मूत्रपिण्ड के लिए भी यह उत्तेजक है इसलिए पेशाब की मात्रा को बढ़ाता है। बड़ी मात्रा में इसको लेने से इसका नशीला प्रभाव होता है और शरीर में जलन पैदा होती है। छोटी मात्रा में इसको लेने से यह जीवन-विनिमय-क्रिया को सुधारता है। इसके साथ में सोंठ, लवंग इत्यादि सुगन्धित पदार्थ देने से इसकी ग्लानि दूर हो जाती है।

वातरक्त रोग के अन्दर यह एक खास औषधि मानी जाती है। शरीर की जीवन विनिमय-क्रिया बिगड़ने से कभी कभी शरीर के जोड़ों में क्षार जम जाता है और उससे सूजन होकर असह्य वेदना होती है, रक्तवाहिनियों में मोटापन आने से हृदय अशक्त होकर फूलता है और पेट में सूजन आ जाती है, पेशाब गाढ़ा होने लगता है और उसमें लालरंग का क्षार बहुत मात्रा में जाने लगता है। ऐसी स्थिति में सुरंजान तल्ख देने से अच्छा लाभ होता है। इस औषधि को पूरी मात्रा में देने से यह तुरन्त अपना प्रभाव बतलाती है, मगर यदि दो-तीन बार देने पर भी इसका प्रभाव दिखलाई न दे तो फिर इस औषधि को देना बन्द कर देना चाहिए। वातरक्त में तरह-तरह के चर्मरोग भी होते हैं उनमें भी यह औषधि लाभ पहुँचाती है। इसकी जड़ को पानी अथवा शराब में पीस कर उसमें केशर मिला कर जोड़ों की सूजन पर लेप करते हैं। आमवात में भी यह औषधि दी जाती है मगर इस रोग की यह खास दवा नहीं है। सुजाक के अन्दर भी इसका उपयोग किया जाता है।

सुरमा

नाम—संस्कृत—सौवीरक, पार्वतेय, स्रोतोंजन, सौवीरांजन, अंजन इत्यादि। हिन्दी—सुरमा, अंजन। बङ्गला-सुर्मा, अंजन। मराठी—काला सुरमा, सफेद सुरमा। गुजराती—सुरमो। तेलगू—सौवीरांजन। फारसी—सुर्म अस्फाहानि। अंग्रेजी—Sulphuret of Antimony (सल्फ्यूरेट ऑफ एण्टिमनी)। लेटिन—Antimonai Sulphuretom (एण्टीमोनाई सल्फूरेटम)

वर्णन—सुरमा हिमालय और पंजाब की कई खदानों से निकलता है तथा कन्दहार और इस्पहान से भी आता है। कुछ लोगों के मत से यह तीन प्रकार का होता है। काला, सफेद और लाल-लाल सुरमे की डली में लोहे के रवों के समान चमकदार रवे रहते हैं। इसको तोड़ने से भीतर से काला और घिसने पर लाल हो जाता है। काला सुरमा कठोर, भारी, चमकदार और पर्त वाला होता है। इसकी चमक बहुत तेज और शीशे के समान होती है।

सुरमे के बदले में बेचने वाला गलीना दे देते हैं। यह भी सुरमे के ही समान होता है। इसलिए असली सुरमा इस्पहानी लेना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से काला सुरमा स्वादिष्ट, नेत्रों को हितकारी, कफ-पित्तनाशक, कसैला, लेखन, स्निग्ध, मलरोधक, वमननिवारक, विषनाशक, हिचकी को दूर करने वाला, क्षयरोग को हरनेवाला, रक्तदोष-निवारक और शीतल होता है।

सुरमा नेत्रों की ज्योति को बढ़ाने और नेत्र रोगों को नष्ट करने के लिए बहुत उपयोग में लिया जाता है। इसमें कई औषधियाँ मिलाकर भिन्न २ प्रकार से इसका अंजन तैयार किया जाता है। ममीरा और नीम के योग से तैयार किया हुआ सुरमा नेत्र रोगों के लिए बहुत उपयोगी होती है।

सूरजमुखी

नाम—संस्कृत—सूर्य्यमुखी, सूर्य्यावर्त्त, सुवर्चला। हिन्दी—सुरजमुखी, हुरहुल। गुजराती—सुरजमुखी। मराठी—सूर्य्यफूला, ब्रह्मीका। बङ्गाल—सूरजमुखी। उर्दू—सूरजमुखी। फारसी—आफताबी, गुले आफताब परस्त। अरबी—अर्कवान। तेलगू—आदित्य भक्तिचेट्टु। इंग्लिश—Lady Eleven (लेडी इलेव्हन)। लेटिन—Helianthus Annuus (हेलीएन्थस एन्युएस)।

वर्णन—यह एकवर्षजीवी पौधा होता है। इसके फूल सूर्योदय होने के साथ खिलते हैं और सूर्यास्त होने के साथ २ मुँद जाते हैं। इसकी दो-तीन तरह की जातियाँ होती हैं। सफेद फूलवाली, नीले फूलवाली, पीले फूलवाली इत्यादि। पीले फूलवाली जाति का वर्णन हुरहुर के प्रकरण में आगे दिया जावेगा।

गुणदोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फूल चरपरा, उष्ण, कृमिनाशक, ज्वर को दूर करनेवाला तथा कफ, चर्मरोग, खुजली, व्रण, कुष्ठ, हिस्टीरिया, कंपकपी के साथ होने वाला ज्वर, पित्तविकार, वातविकार, दमा, खाँसी, प्रमेह और पाण्डुरोग में लाभ पहुँचाता है। योनिशूल, पथरी, मूत्रकृच्छ, बिच्छू का विष और गुल्म रोग को यह दूर करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ का काढ़ा दाँतों को मजबूत करता है और दन्तशूल को नष्ट करता है। इसके पत्ते वमनकारक होते हैं और कमर की पीड़ा को दूर करते हैं। इसके फूल कड़वे और खराब स्वाद वाले होते हैं। ये पौष्टिक, ऋतुस्रावनियामक, कामोद्दीपक और सूजन को नष्ट करने वाले होते हैं। ये पागलपन और भ्रम के अन्दर दिये जाते हैं। छाती, यकृत और फेफड़ों की तकलीफ में इनका लेप किया जाता है। बवासीर, नेत्र शुक्ल, जलोदर और गुरदे के रोगों में भी इनका उपयोग किया जाता है।

इसके बीज मूत्रल और कफनिस्सारक होते हैं। यह बनस्पति खाँसी, जुकाम, फेफड़े की विकृति, कण्ठनाली की खराबी इत्यादि रोगों में सफलता के साथ उपयोग में ली जाती है।

इसके बीजों में एक प्रकार का तेल रहता है जो रूसी फार्माकोपिया में सम्मत माना गया है।

वाग्भट के मतानुसार इसका फूल सर्पविष में लाभ पहुँचाता है। रसरत्नाकर के मतानुसार यह बिच्छू के विष में लाभदायक होती है। विषदंशित रोगी की खराब हालत में इसके फूलों का रस गरम करके नाक में टपकाने से उसमें चैतन्यता आ जाती है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पविष में तथा विष में निरुपयोगी है।

सूरजकान्ति

नाम—आसाम—सूरजकान्ति। इंग्लिश—Leopard Lily (लियोपार्ड लिली)। लेटिन—Belamcanda Chinensis (बेलमकेण्डा चाइनेन्सिस)।

वर्णन—इस वनस्पति का मूल उत्पत्तिस्थान चीन है मगर भारतवर्ष में भी इसकी खेती की जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—रीड के मतानुसार मलावार में इसकी जड़ विषनाशक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती है। जिन लोगों को कोबरा नामक भयंकर विषधर साँप काटता है उनको यह दी जाती है। ऐसे पशुओं पर भी जो कि जहरीली वनस्पतियाँ खाकर विषग्रस्त हो जाते हैं, इसका उपयोग किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लखीमपुर में इसकी डालियों को पीसकर उदरशूल को दूर करने के लिए देते हैं।

इसकी जड़ों में मृदुविरेचक और फोड़े को गलानेवाले तत्त्व रहते हैं। यह रक्तशोधक होती है और गले की पीड़ा में यह विशेष रूप से उपयोगी होती है।

इसकी जड़ का कन्द चीन के अन्दर बहुत उपयोग में लिया जाता है। वहाँ यह कफनिस्सारक, शान्तिदायक और बाधानाशक माना जाता है। यह यकृत के रोग, रक्तरोग और फुफ्फुस सम्बन्धी रोगों में उपयोग में लिया जाता है। मलाया में यह सुजाक के अन्दर उपयोग में लिया जाता है। भूलू लोग इस वनस्पति को जवान लड़कियों को होनेवाले हिस्टीरिया रोग में देते हैं।

सूर्य-किरण

नाम—संस्कृत—सूर्यरश्मि। हिन्दी—सूर्य-किरण। अंग्रेजी—Sunbeam (सनबीम)

वर्णन—सूर्य की किरणों का जो संसार को प्रकाश देती हैं परिचय देने की आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—सूर्य की किरणें सारे संसार को प्रकाश देती हैं, प्रकाश के साथ साथ वह उन जीवन तत्त्वों की भी वर्षा करती हैं जिनसे मनुष्य, सारा प्राणी संसार, बनस्पति संसार तथा सारा जगत्, जीवन और स्वास्थ्य का ग्रहण करता है।

इतिहास, पुराणादि प्राचीन साहित्य में सूर्य के प्रकाश का अत्यन्त महत्त्व माना गया है और यही कारण है कि वेदों में सूर्य-पूजा को खास महत्त्व दिया गया है। मिश्र, ईरान, यूनान और रोम की सभ्यताओं में भी सूर्य-पूजा प्रचलित थी। ईसा के चार सौ वर्ष पहले पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र के मूलजनक हिपाक्रेटस ने ग्रीक द्वीप—कॉस में सूर्य-चिकित्सा का उपयोग किया था। प्राचीन यूनानी और रोमन लोगों ने पर्वतों पर सूर्यचिकित्सालय बनवाये थे।

मनुष्य शरीर में होनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों को सूर्य-किरणों के द्वारा किस प्रकार आराम किया जा सकता है, इसका ज्ञान सूत्र रूप में प्राचीन भारत के चिकित्सा शास्त्रियों को अवश्य था, मगर आधुनिक युग में इस चिकित्सा को व्यावहारिक रूप देने का श्रेय सुप्रसिद्ध डेनिश डाक्टर 'नाईल्स फिन्सेन' को है। ईसवी सन् १८६३ में इस डाक्टर ने सूर्य-किरणों के महत्त्व को प्रकट किया। ईसवी सन् १८६५ में उन्होंने सूर्यकिरणों से एक क्षय के रोगी को आराम किया।

सन् १६०३ में डाक्टर रॉलियर ने स्विट्झरलैंड के आल्पस पर्वत पर लेसीन नामक स्थान में सूर्य किरण चिकित्सा का काम आरम्भ किया। डाक्टर रॉलियर ने नैसर्गिक सूर्यप्रकाश से कई रोगों की सफल चिकित्सा की।

डा० फिन्सेन के उक्त युगपरिवर्तनकारी आविष्कार के पश्चात् इस चिकित्सा-पद्धति में आश्चर्यकारी उन्नति हुई। धीरे-धीरे अनुसन्धान से यह पता चला कि आधुनिक पारद वाष्प लैम्प (Mercury Vapour) टंगस्टेत लैम्प आदि में प्राकृतिक सूर्यप्रकाश से भी पराकासनी किरणें (Ultra Violet Rays) अधिक तादाद में रहती हैं। ये सूर्य किरणों को अदृश्य रूप से ग्रहण करती हैं। प्राकृत सूर्य-किरणों से भी इनमें रोग प्रतिहारक शक्ति अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त उक्त विभिन्न प्रकार के लैम्प आवश्यकतानुसार भिन्न २ परिमाणों में इन किरणों को निकाल सकते हैं। अर्थात् रोग को दूर करने के लिये जिस परिमाण में किरणों की आवश्यकता होती है उतने ही परिमाण में लैम्पों से प्राप्त की जा सकती है।

अभी तक इस बात का पता नहीं लग पाया कि शरीर पर ये किरणें किस प्रकार काम करती हैं। मगर इतना निश्चित रूप से मालूम हो गया है कि शरीर पर अपना प्रभाव प्रकट करती हैं। इन अदृश्य पराकासनी किरणों की काम-शक्ति के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार के मत हैं। एक मत यह है कि स्नायुमण्डल द्वारा ये अपना प्रभाव प्रकट करती हैं। दूसरा मत यह है कि ये रक्त में शोषण हो जाती हैं और उसी के द्वारा सारे शरीर पर अपना प्रभाव पहुँचाती हैं। कुछ भी हो यह निश्चित है कि इनमें आश्चर्यजनक शक्ति है और प्राणीजीवन में ये नवजीवन और नवशक्ति का संचार करती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पराकासनी किरणों का रक्त पर प्रभाव—इन अदृश्य सूर्य-किरणों का रक्त पर ठीक-ठीक क्या प्रभाव पड़ता है इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अनुसन्धान अभी जारी है, पर इतना निश्चित रूप से अनुभव में आ चुका है कि रक्ताभिसरण की खराबियों और उनसे होनेवाले रोगों जैसे एनीमिया (पाण्डुरोग) और ल्यूकोमिया को अच्छा करने में यह बहुत काम करता है। बच्चों के सूखा रोग में भी इनका बड़ा उपयोग होता है। इस चिकित्सा से सूखा रोग वाले बच्चों को सुख से नींद आने लगती है, उनकी भूख बढ़ जाती है, उनके शरीर में नवजीवन का संचार होने लगता है, क्योंकि इन किरणों के प्रयोग से उनके रक्त में केलसियम और फास्फोरस की वृद्धि हो जाती है। उनका वजन और ऊँचाई बढ़ने लगती है। उनकी हड्डियाँ भी मजबूत हो जाती हैं। यह बात एक्सरे की परीक्षा से प्रत्यक्ष हो गई है। कुछ प्रसिद्ध चिकित्सकों का मत है कि जिन स्त्रियों को शीघ्र प्रसूति होनेवाली है उनको इन किरणों का हलका स्नान करा देना चाहिए। क्योंकि इन किरणों से केलसियम के तत्त्व की वृद्धि होती है जो कि इस अवस्था में बहुत आवश्यक है।

क्षयरोग और पराकासनी (Ultra Violet) किरणें—फेफड़ों के क्षय को छोड़कर और सब प्रकार के क्षय रोगों में ये किरणें, चाहे वे प्राकृतिक हों या कृत्रिम, बड़ा काम करती हैं, आजकल कई स्थानों में केवल इन्हीं किरणों के द्वारा क्षय की चिकित्सा की जाती है। चिकित्सा-संसार में आज इस चिकित्सा के सम्बन्ध में जोर-शोर से अनुभव हो रहे हैं।

कण्ठमाला या टी० बी० ग्लैण्ड्स पर भी ये किरणें आश्चर्यजनक रूप से काम करती हैं। एक अनुभवी डाक्टर ने हमसे कहा कि जो टी० बी० ग्लैण्ड्स दूसरी किसी भी चिकित्सा-पद्धति से आराम नहीं होते हैं वे भी इस अल्ट्रा व्हायोलेट चिकित्सा से आराम हो जाते हैं।

जीवाणु और पराकासनी किरणें—ईसवी सन् १८७७ में डेन्सि और ब्लण्ट नामक विद्वानों ने प्रकट किया कि सूर्यकिरणों में जीवाणुनाशक तत्त्व मौजूद रहते हैं। इसके तेरह वर्ष के पश्चात् राबर्टकौच नामक विद्वान ने क्षयरोग के कीटाणुओं पर सूर्यप्रकाश का प्रयोग किया और यह अनुभव किया कि यह कीटाणु सूर्य्य प्रकाश में दस मिनट से अधिक नहीं जी सकते। तब से क्षयरोग में सूर्यप्रकाश बहुत लाभकारक माना जाता है। इसी से यह कहा जाता है कि अन्धेरे में क्षयरोग फलता-फूलता और प्रकाश में वह दुम दबाकर भागता है। मतलब यह कि पराकासनी अदृश्य किरणें—चाहे वे प्राकृतिक हों चाहे कृत्रिम—जीवाणुनाशक शक्ति रखती हैं।

पराकासनी किरणें और विसर्पिका (Herpes) रोग—विसर्पिका रोग में पराकासनी किरणों का आश्चर्य-जनक प्रभाव होता है। बड़े अनुभवी डाक्टरों का कथन है कि इस रोग में जितना ये किरणें काम करती हैं उतना संसार की कोई चिकित्सा-पद्धति नहीं करती। अगर रोग के होते ही कुशल हाथों के द्वारा किरण-चिकित्सा कराई जाय तो रोग के शीघ्र मिट जाने की पूरी सम्भावना रहती है। इस रोग में खास तौर पर यही चिकित्सा करवानी चाहिए।

पाण्डुरोग, ल्यूकोमिया और पराकासनी किरणें—पाण्डुरोग या हारिद्र रोग में सप्ताह में दो बार इन किरणों का स्नान करा देने से रोगी को बड़ा लाभ होता है और रक्त-कणों की संख्या बढ़ती है।

ल्यूकोमिया रोग में सप्ताह में दो बार लाल किरणों का (Intra Red) स्नान कराने से फायदा होता है।

इसी प्रकार स्नायुशूल, कटिस्नायुशूल, पाकाशय के रोग, दमा, सन्धिवात, सब प्रकार के चर्मरोग, दन्तरोग इत्यादि मनुष्य शरीर में होनेवाले अनेक रोगों में इसी चिकित्सा से बहुत लाभ होता है।

कुछ ऐसी भी बीमारियाँ होती हैं जिनमें अल्ट्रावॉयलेट चिकित्सा लाभ के बदले हानि भी पहुँचा देती है। जैसे गुर्दे की बीमारियाँ, केन्सर, निर्बल हृदय, फेफड़ों का क्षय आदि ऐसे रोगों में यह चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

सूर्य्य-किरणों में कई विशेषताएँ ऐसी हैं जिनसे साधारण मनुष्य भी बिना किसी विशेष सामान के पर्याप्त लाभ उठा सकता है, ऐसी ही कुछ विशेषाताओं का नीचे संक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

सूर्य्य किरण और विटामिन 'डी'—यह एक आश्चर्य की बात है कि जीवन तत्त्व विटामिन 'डी' जो मनुष्य के जीवन के लिए एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है सूर्य्य किरणों के अन्दर काफी तादाद में पाया जाता है।

सूर्य किरणें जब शरीर की त्वचा पर पड़ती हैं तो चर्म-छिद्रों के नीचे के अवयवों में मौजूद रहनेवाली चरबी और तेल में ऐसा रासायनिक परिवर्तन कर देती हैं कि वहाँ पर अपने आप विटामिन 'डी' पैदा हो जाता है। जिसका शरीर लाभ उठाता है। इसलिए विटामिन 'डी' प्राप्त करने के लिए धूप का सेवन करना ही सबसे उत्तम साधन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन सूर्य-किरणों से बिना किसी खर्च के, बिना किसी मशीन की सहायता के और बिना किसी विशेष वैज्ञानिक ज्ञान के आसानी से विटामिन 'डी' प्राप्त किया जा सकता है। इस कार्य को घर की स्त्रियाँ भी आसानी से कर सकती हैं।

जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में सूर्य किरणों के द्वारा विटामिन 'डी' पैदा होता है उसी प्रकार चिकनाई वाले भोज्य पदार्थों को भी धूप में रख देने से सूर्य की किरणें उन भोज्य पदार्थों में विटामिन 'डी' पैदा कर देती हैं। भोजन को सूर्य की किरणों अथवा कृत्रिम किरणों के प्रकाश में रखकर विटामिन 'डी' प्राप्त करने की क्रिया को अंग्रेजी में इरेडिएशन (Irradiation) कहते हैं। इस क्रिया के द्वारा विटामिन 'डी' तैयार करके अगर उसे कुछ समय तक सुरक्षित रखना हो तो इस कार्य के लिए उत्तम घी या जैतून के तेल में इसको प्राप्त करना चाहिए। नारियल का तेल या मूंगफली का तेल भी इस कार्य के लिए काम में लिया जा सकता है मगर यह उतना उत्तम नहीं होता जितना घी या जैतून का तेल होता है। विटामिन 'डी' को प्राप्त करने की विधि इस प्रकार है:—

एक चौड़ी रकाबी या थाली में घी या जैतून का तेल लेकर ऐसे स्थान में रख देना चाहिए जहाँ सूर्य की किरणें उस पर सीधी पड़ सकें। यह ध्यान में रखना चाहिए कि उस थाली में घी या जैतून के तेल की तह बहुत पतली हो। मोटी तह होने पर सूर्य की किरणें उसके निचले हिस्से तक नहीं पहुँच सकेंगी। इस प्रकार उस थाली को दिन भर सूर्य की धूप में पड़ी रहने दें, बस उसमें विटामिन 'डी' तैयार हो जावेगी। लेकिन यदि विटामिन 'डी' की तत्काल आवश्यकता हो तो घी या जैतून के तेल को सिर्फ बीस मिनट सूर्य की सिधी किरणों के नीचे रख देने से काम चल जावेगा।

इस तरह से प्राप्त किये गये विटामिन 'डी' को ८ महीने तक रक्खा जा सकता है। इस मियाद तक वह नष्ट नहीं होता। लेकिन इतनी मियाद तक सुरक्षित रखने के लिए कुछ विशेष सावधानी करनी पड़ती है अर्थात् उस घी या जैतून के तेल को गहरे भूरे रंग के बोतल में भरकर मजबूत काग लगाकर किसी अन्धेरे स्थान में रख दें। यह ध्यान में रखना चाहिए कि हर बार बोतल का काग खोलने पर हवा के सम्पर्क से विटामिन का कुछ न कुछ अंश गायब हो जाता है।

इस प्रकार घर पर विटामिन 'डी' प्राप्त करने में कुछ और आवश्यक बातों पर ध्यान रखना चाहिए और वे इस प्रकार हैं। (१) कांच की बोतल में घी आदि रखकर उसमें विटामिन 'डी' प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। क्योंकि सूर्य की किरणें साधारण शीशे को पार कर उसके अन्दर बहुत देरी में पहुँचती हैं। (२) घी या जैतून के तेल को बहुत मोटी तह में नहीं रखना चाहिए, क्योंकि पतली तह होने पर ही सूर्य की किरणें पूरी तरह से उस पर पड़ सकती हैं। मोटी तह होने पर वह अधिक मात्रा में विटामिन 'डी' प्राप्त न कर सकेगी। (३) धूप या रोशनी में रखकर विटामिन 'डी' प्राप्त करने की क्रिया के समाप्त हो जाने पर उस घी या जैतून के तेल को खुला न रखें। विटामिन 'डी' बन जाने पर उसे बोतल में भरकर बोतल को काग से बन्द कर दें। (४) इसे बहुत अधिक समय तक न रक्खें। हालांकि वैज्ञानिक प्रयोगों से यह बात साबित हो चुकी है कि अगर ठीक तौर से रक्खा जाय तो इस प्रकार से तैयार किया हुआ विटामिन 'डी' महीनों तक रह सकता है लेकिन अच्छा यही होता है कि इसे शीघ्र उपयोग में ले लिया जाय और समाप्त हो जाने पर फिर ताजा विटामिन 'डी' तैयार करा लिया जाय।

उपरोक्त विधि के साथ विटामिन 'डी' घर के अन्दर तैयार किया जा सकता है और इस प्रकार तैयार किये हुए विटामिन 'डी' को उन सब बीमारियों में जैसे शरीर की बाढ़ का रुकना, क्षय, मृगी, दिल की धड़कन, कब्ज इत्यादि रोगों पर सफलता के साथ उपयोग किया जा सकता है और इसके लिए काम में ली जाने वाली 'कॉड लीवर 'आइल' अण्डे की जरदी' 'एडोक्सलीन' इत्यादि अपवित्र, गन्दी और मूल्यवान् वस्तुओं से बचा जा सकता है।

सूर्यकिरणों में रहनेवाले रंगों के द्वारा अनेक रोगों की चिकित्सा—इस बात को सभी कोई जानते हैं कि सूर्य-किरणों में अनेक प्रकार के रङ्ग रहते हैं, जो कि हमें इन्द्रधनुष के अन्दर या बिल्लौरी कांच के अन्दर दिखलाई देते हैं। युरोप के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने सूर्य-किरणों में रहने वाले रङ्गों का मनुष्य शरीर के साथ समीकरण किया है। वैज्ञानिक का कथन है कि जो रंग सूर्य किरणों में रहते हैं वे ही मनुष्य शरीर के अन्दर भी रहते हैं और उन रंगों में कुछ कमी-वेशी होते ही मनुष्य अस्वस्थ और रोगग्रस्त हो जाता है, उस रोग को दूर करने के लिए अगर उसके शरीर में उस रंग की कमी को पूरा कर दिया जाय तो वह तत्काल रोगमुक्त हो जाता है। उक्त वैज्ञानिक के द्वारा प्रचलित की हुई इस पद्धति को 'क्रूमोपैथी' कहते हैं। अपनी सफलता के कारण बहुत थोड़े समय में ही यह चिकित्सा-पद्धति सारे संसार में लोकप्रिय हो गई है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस चिकित्सा-पद्धति का यह अभिप्राय है कि मनुष्य शरीर में प्रायः तीन प्रकार के रंग प्रधानरूप से रहते हैं। नीला, लाल और पीला। ये तीनों रंग जब तक एक निश्चित मात्रा में रहते हैं तब तक मनुष्य शरीर बिलकुल स्वस्थ रहता है। मगर इन तीनों रंगों की मात्रा में कमीवेशी होते ही उसमें रोग का सूत्रपात हो जाता है।

रोग का सूत्रपात होते ही हमें उसका निदान चार चीजों का रंग देखकर करना चाहिए। आँख, नख, पेशाब और दस्त। इन्हीं चार चीजों का रङ्ग देखकर रोग का विचार करना चाहिए। जैसे यदि किसी रोगी की आँखें नीली हो गई हों, उसके हाथ के नाखून नीले या सफेद लकीरों से युक्त हो गये हों, उसका पेशाब अथवा दस्त नीला या सफेद होता हो तथा वह सुस्त, आलसी और निद्रालु हो गया हो, उसकी भूख बन्द हो गई हो तो समझना चाहिए कि उसमें लाल रंग की कमी है। इसी प्रकार यदि किसी रोगी की आँखें लाल या पीली हों उसके नाखून पीले हो गये हों, पेशाब और दस्त पीला अथवा कुछ ललाई लिये हुए पीला हो, उसका मिजाज गर्म रहता हो, वह चञ्चल हो, उसे ज्वर मालूम होता हो, दस्त की हाजत बनी हो मगर दस्त न हो तो समझना चाहिए कि उसमें नीले रंग की कमी है।

यह भी एक ध्यान में रखने की बात है कि किसी २ रोगी को छोटी मात्रा में किसी रंग की आवश्यकता होती है और किसी को बड़ी मात्रा में। उग्र और आकस्मिक हमला करने वाले रोगों में किसी भी रंग की कमी एक दम और शीघ्र हो जाती है। अतः उस कमी को पूरा करने के लिए जल्दी २ और बड़ी मात्रा में औषधि देने की आवश्यकता होती है। पुराने, धीमे और दीर्घकाल स्थायी रोगों में अधिक देरी से थोड़ी मात्रा में औषधि दी जाती है। जैसे हैजे के समान आकस्मिक रोग में शरीर का नीला रंग एकदम कम हो जाता है इसलिए उसकी पूर्ति के लिए इस रोग में नीली बोतल का पानी थोड़ी-थोड़ी देर में पिलाया जाता है।

कभी २ ऐसा होता है कि नाखून, पेशाब और दस्त इन चारों का रंग एक समान नहीं होता। ऐसी स्थिति में तीन चीजों को देखकर औषधि देना चाहिए। कई रोग ऐसे होते हैं जिससे इन चारों चीजों में रंग के लक्षण पहचाने नहीं जा सकते, जैसे आँख आना, खुजली, सिर दर्द, फोड़ा, घाव आदि। ऐसे रोगों में जहाँ पर वेदना हो उसी स्थान का रंग देखकर औषधि निश्चित करना चाहिए। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि आँखों के रंग से कभी २ बड़ा धोखा हो जाया करता है। शरीर में लाल रंग का अभाव होने पर भी ये लाल सुर्ख रहती हैं। इनको देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि शरीर में लाल रंग अधिक हो गया है। मतलब यह कि रोग का निदान करते समय पूरी सावधानी से काम लेना चाहिए।

औषधि तैयार करने की विधि—इस चिकित्सा-पद्धति को आरम्भ करने के पहले हलके नीले, गहरे नीले, लाल और पीले इन चार रंगों की बोतलों और इन्हीं चार रंग के फ्रेम जड़े हुए शीशो की आवश्यकता होती है। चारों रंगों की बोतलों को खूब अच्छी तरह से धोकर, माजकर अत्यन्त निर्मल कर लेना चाहिए। बोतलें जितनी अधिक निर्मल होंगी, औषधि उतनी ही उत्तम बनेगी। फिर इन बोतलों में कुएँ का अथवा बरसात का झेला हुआ (Rain water) स्वच्छ पानी भरकर उनका मुँह साफ काग से बन्द कर देना चाहिए। इसके पश्चात् इन बोतलों को सूरज की धूप में इस प्रकार रखना चाहिये जिससे सूर्य की किरणें इन पर बराबर पड़ती रहें। कम से कम दो घंटे तक इन बोतलों को सूरज की धूप में अवश्य रखना चाहिए। कुछ अधिक समय भी रह जाय तो कोई हानि नहीं, बल्कि उस पानी की शक्ति उससे अधिक ही बढ़ेगी। पर बोतलों को धूप में इस प्रकार रखना चाहिए कि उन पर सूरज की रोशनी चारों तरफ समान रूप से पड़े।

इस विधि से नीली बोतल में तैयार हुआ पानी नीला पानी और लाल बोतल में तैयार हुआ पानी लाल पानी कहलायगा। इस पानी की शक्ति तीन दिन तक रहती है। तीसरे दिन बचे हुए सब पानी को फेंककर, बोतलों को फिर साफ कर फिर नया पानी तैयार करना चाहिए।

सूर्य किरणों से तैयार किए हुए पानी ही मनुष्य शरीर में होने वाले भिन्न-भिन्न रोगों की औषधियां हैं। इसकी पूरी मात्रा आधी छटाक की होती है जो आवश्यकता पड़ने पर दिन में कई बार दी जा सकती है।

इन बोतलों में सरसों का तेल भर कर भी उसमें सूर्य-किरणों से रङ्ग प्राप्त किया जा सकता है। मगर तेल की इस बोतल को एक महीने तक सूरज की धूप में रखना चाहिए।

नीली बोतल में तैयार किया हुआ सरसों का तेल अगर सिर के पिछले भाग में बराबर पन्द्रह दिन तक मालिश किया जाय तो धातुक्षीणता और वीर्य का पतलापन मिटकर शरीर पुष्ट होता है। सफेद बालों को भी यह

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काला करता है। मगर यह ध्यान रखना चाहिये कि पानी या तेल सूर्य की किरणों से ही यह शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। बिजली या लैम्प की रोशनी से नहीं।

रंगीन बोतलों के पानी के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग के शीशों से भी मनुष्य शरीर में होनेवाली रंग की कमी को पूरा किया जा सकता है। इन शीशों को लकड़ी के फ्रेम में लगाकर रखते हैं। जब शरीर के किसी अङ्ग में किसी रंग की कमी मालूम हो तो उस अङ्ग को धूप में रखकर उसी रंग के शीशे की छाया उस पर डालनी चाहिए। यदि सारे शरीर में किसी रंग की कमी हो तो एक ऐसे कमरे में जिसके दरवाजे और खिड़कियों को बन्द्र कर देने पर उसमें घना अन्धकार हो जाय—रोगी को लिटा देना चाहिए और उसकी सिर्फ एक खिड़की को खोल कर उस खिड़की पर वह शीशा लगाकर, उससे आनेवाली प्रकाश राशि को शरीर पर डालना चाहिए। अगर सूर्य प्रकाश न हो तो बिजली या लैम्प का प्रकाश भी उस शीशे के द्वारा डाला जा सकता है। इस क्रिया से भी उस रंग की कमी पूरी की जा सकती है।

भिन्न-भिन्न रंगों के मानवीय शरीर पर प्रभाव—हलका नीला रंग—क्रूमोपैथी चिकित्सा में नीला रंग सबसे अधिक महत्त्व का माना गया है। इस चिकित्सावालों का कथन है कि, नीला रंग ही जीवन है। मनुष्य शरीर में जितनी कठिन-कठिन बीमारियाँ होती हैं, वे सब प्रायः नीले रंग के अभाव से होती हैं। इस रंग का कभी-कभी इतना प्रभाव होता है कि लोग देख कर चकित रह जाते हैं। एक बार एक पागल स्त्री पर नीले रङ्ग की रोशनी डालने से बात की बात में वह आराम हो गई।

पागल कुत्ते के विष पर भी नीले रङ्ग की बोतल का पानी बहुत लाभ पहुँचाता है। इस चिकित्सा में सात-आठ दिन तक नीली बोतल का पानी ढाई २ तोले की मात्रा में, तीन-तीन घंटे के अन्तर से देना चाहिए। उसके पश्चात् जब बीमारी के लक्षण कुछ कम हो जायँ तब दिन में तीन बार और उसके पश्चात् दिन में एक बार सोते समय देना चाहिए।

इसके साथ ही काटी हुई जगह पर नीले कांच की रोशनी डालनी चाहिए और उस घाव पर नीली बोतल के पानी में फोया तर करके रखना चाहिए।

हैजे की बीमारी और नीली बोतल का पानी—हैजे की बीमारी में नीली बोतल का पानी बहुत काम करता है। इसको एक औंस की मात्रा में थोड़ी-थोड़ी देर में पिलाने से प्यास बन्द होती है, वमन और दस्त रुक जाते है, शरीर की ऐंठन और वाइंटे आना बन्द हो जाते हैं। पेशाब चालू हो जाता है। इस प्रकार हैजे के सब लक्षणों में इससे फायदा होता है। मनुष्य का जीवन प्राणवायु और अपानवायु के सम्बन्ध पर निर्भर करता है इन दोनों का सम्बन्ध विच्छेद होते ही जीवन की समाप्ति हो जाती है। हैजे की गरमी एकाएक शरीर में बढ़ कर प्राणवायु और अपानवायु के सम्बन्ध को विच्छेद कर देना चाहती है। प्राणवायु ऊपर जाती है। जिससे वमन होते हैं और अपानवायु नीचे जाती है जिससे दस्त होते हैं।

जब शरीर में गर्मी या लाल रङ्ग का प्रभाव बढ़ जाता है तभी हैजा होता है। यही कारण है कि भले, चंगे और पुष्ट तथा गरम प्रकृति वाले युवकों पर यह बीमारी जल्दी हमला करती है। दुर्बल और कफ प्रकृतिवाले मनुष्य अक्सर इससे बच जाते हैं।

कुछ डाक्टरों का कथन है कि हैजा होते ही अगर रोगी जल के अन्दर बैठ जाय तो वह मृत्यु के मुख से बच सकता है। हैजे के दिनों में अगर स्वस्थ मनुष्य दिन में तीन-चार बार स्नान कर लिया करे तो वह इस बीमारी के हमले से बच सकता है। इस प्रकार हैजे के दिनों में स्वस्थ मनुष्य भी नीली बोतल का जल दिन में एक दो बार पी लिया करें तो वे इस बीमारी के पंजे से बच सकते हैं।

मतलब यह कि नीली बोतल का जल हैजे की बीमारी में एक कीमती औषधि है। हाँ, अगर रोगी की हालत आखिरी हो गई हो और उसके हाथ-पैर ठण्ढे हो गए हों तो उस समय शरीर में गर्मी का संचार करने के लिए लाल बोतल का जल देना चाहिए। पर यदि गर्मी आते ही फिर रोग के लक्षण दिखलाई दें तो फिर नीले रङ्ग की बोतल का जल देना चाहिए।

पेचिश, आँव और खूनी दस्तों में नीली बोतल का जल बहुत लाभ पहुँचाता है जब शरीर में नीले रङ्ग की कमी और लाल रंग की अधिकता होती है तभी यह बीमारी होती है। इसलिए ऐसे रोगी को गर्म चीजें न खिलाना चाहिए और न लाल बोतल का पानी देना चाहिए। हलके नीले रंग की बोतल का पानी इस बीमारी को दूर कर देता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्लेग की बीमारी और नीला रङ्ग—प्लेग की बीमारी में भी नीली बोतल का पानी बहुत लाभ पहुँचाता है। इस बीमारी में इसको आधे-आधे घण्टे के अन्तर पर देना चाहिए। अगर गठान निकल आवे तो उस पर नीले रङ्ग के शीशे की रोशनी डालनी चाहिए। यदि गठान चीर दी गई हो तो उस पर नीली रोशनी के बदले हरी रोशनी डालनी चाहिए। प्लेग और हैजे के दिनों में नीली बोतल का पानी सवेरे शाम एक एक औंस की मात्रा में लेते रहने से बीमारी का भय कम हो जाता है।

इसी प्रकार गर्मी की अधिकता से होने वाला बुखार, यकृत और तिल्ली के रोग, मलेरिया इत्यादि रोगों में भी हलके नीले रङ्ग की बोतल का पानी बहुत उपयोगी होता है।

गहरे नीले रंग का मानवीय शरीर पर प्रभाव—गहरे नीले रंग में कुछ लाल रंग की झलक होती है। यह रंग पके हुए बैंगन अथवा जामन के समान होता है। इस रंग की बोतल का पानी फेफड़े और कण्ठ-नाली की बीमारियों में बहुत लाभदायक होता है। इसलिए निमोनिया रोग में गहरे नीले रङ्ग की बोतल का पानी एक २ औंस की मात्रा में तीन २ घण्टे के अन्तरपर देने से बहुत लाभ होता है। राजयक्ष्मा रोग की प्रथम अवस्था में भी इसको देने से बड़ा लाभ होता है।

दुर्बल और वृद्ध लोगों को हलके नीले रङ्ग की अपेक्षा गहरे नीले रंग की बोतल का पानी विशेष लाभदायक होता है। क्योंकि वृद्ध मनुष्यों को कुछ गरमी की भी आवश्यकता रहती है, जो उन्हें इसमें रहने वाले सूक्ष्म लाल रंग से मिल जाती है।

पीले रङ्ग का मानवीय शरीर पर प्रभाव—पीले रंग के बोतल अक्सर बहुत कम मिलते हैं। जो मिलते हैं उनमें कुछ लाली अवश्य होती है इसका नाम पीला नहीं बल्कि नारंगी कहना चाहिए। इस रंग की बोतल का पानी कब्जियत को दूर करता है, लेकिन इसको कुछ अधिक समय तक सेवन करना चाहिये। जिससे अँतड़ियाँ अपना पूरा पूरा काम करने लग जाँय। अधिक मात्रा में इस पानी को सेवन कर उत्तेजना बढ़ाने से हानि होने की सम्भावना रहती है। मगर इसको थोड़ी २ मात्रा में धीरे २ सेवन करते रहने से पुराना कब्ज भी मिट जाता है। एक बैठक पर अधिक समय तक बैठकर काम करने वाले लोगों के लिए यह रङ्ग बहुत उपयोगी है। छोटे बच्चों को भी लाल रंग की जगह यही रंग देना चाहिए।

लाल रङ्ग का मानव शरीर पर प्रभाव—लाल रंग का धर्म गर्म और रेचक होता है। शरीर के भिन्न २ अंग जो किसी कारण से सुस्त हो गये हों इस रंग से अपनी असली अवस्था में आ जाते हैं। यह रंग पक्षाघात, गठिया, लकवा इत्यादि रोगों में अच्छा लाभ पहुँचाता है।

इस विषय की विशेष जानकारी सूर्य किरण चिकित्सा के किसी ग्रन्थ में देखना चाहिए।

सर्प बूटी (मीन)

नाम—हिमालय—सर्प बूटी, मीन।

वर्णन—यह वनस्पति बद्रीनाथ तथा केदारनाथ के आस पास नीचे की पहाड़ियों में पदा होती है। इसको वहाँ के पहाड़ी लोग मीन अथवा सर्प बूटी के नाम से पहचानते हैं। इस बूटी का आकार साँप के समान होता है। इसमें अलग २ चार पत्ते निकलते हैं और फिर आठ हो जाते हैं। ये साँप के फन के समान होते हैं। भीतर की बाजू से इनका रङ्ग नाग की जीभ के समान होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति तीव्र विषयुक्त होती है। अशुद्ध स्थिति में ज्यों की त्यों खाने से यह तत्काल प्राणनाश करती है। मगर यदि इसको शुद्ध करके उपयोग में लिया जाय तो यह पाण्डुरोग, कामला, कृमिरोग इत्यादि रोगों में बहुत लाभ पहुँचाती है और जाड़े के दिनों में शरीर में गरमी पैदा करके सरदी से रक्षा करती है।

सर्प बूटी को शुद्ध करने की विधि—सर्प बूटी को पहले नमक डाले हुए पानी में डालकर औटाना चाहिए। फिर उसे कपड़े में बाँधकर नदी के बहाव में उस कपड़े की पोटली को चौबीस घण्टे तक रखना चाहिए। फिर उसको घी में तलकर उपयोग में लेना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

साम्भर का सींग

नाम—संस्कृत—सावरश्रृंग। हिन्दी—साम्भर का सींग।

वर्णन—साम्भर नील गाय की तरह एक जंगली जानवर होता है, इसको बारहसिंगा भी कहते हैं। इसके सींग बड़े सुन्दर और शाखा-उपाशाखवाले होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—साम्भर के सींग की भस्म खाँसी, कफ, पसली का दर्द, जुकाम, श्वासकष्ट, बच्चों का डिब्बे का रोग इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है।

साम्भर सींग को भस्म करने का विधि—साम्भर के सींगको लाकर उसके चार इंच लम्बे और अंगुली के समान मोटे टुकड़े करके उन टुकड़ों को चौबीस घण्टे तक आक के दूध में भिगोना चाहिए। फिर उनको ऊपले कण्डों से भरी हुई सिगड़ी में रखकर जलाना चाहिए। जलाने की यह क्रिया खुली जगह में होना चाहिए, क्यों कि जलाते समय इसमें से बहुत खराब गन्ध निकलती है। जलते २ जब वे काले कोयले की तरह होकर कुछ सफेदी पर आ जांय और धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब उनको निकाल कर पीस लेना चाहिए।

इस प्रकार तैयार की हुई राख को आक के दूध में घोटकर फिर उसकी दो दो तोले की टिकड़ियाँ बना लेना चाहिए। इन टिकयिड़ों को सुखाकर एक मिट्टी की हांड़ी में रखकर उस हांडी पर एक ऐसा ढकना रखना चाहिए जिसमें अंगुली के बराबर छिद्र हो। फिर उस हांड़ी को गजपुट में रखकर फूँक देना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर हाण्डी को खोलने पर उसमें सफेद रङ्ग की उत्तम भस्म मिलेगी। अगर उसका रङ्ग बराबर सफेद न हुआ हो तो उसे फिर एक बार आंक के दूध में घोटकर गजपुट में फूँकना चाहिए।

यह भस्म मिमोनिया रोग में बहुत लाभ पहुँचाती है। विशेष कर बच्चों के ब्रेङ्कों निमोनिया में इसको एक चावल या दो चावल की मात्रा में माँ के दूध के साथ थोड़ी २ देर में देनेसे बड़ा लाभ होता है।

सूर्य्यभिड़ा

नाम—संस्कृत—सूर्य्यभिरा, कोकिलाक्ष, एककण्टका, अद्यान्दा। तेलगू—पिन्नागोरोटा। उड़िया—कोईलेखा। लेटिन—Barleria Longiflora (बारलेरिया लांगिफ्लोरा)।

वर्णन—यह एक भूरे रंग की मखमली झाड़ी होती है। इसकी ऊँचाई २४ से लेकर ४८ इञ्च तक होती है। इसके पत्ते छोटे २ एक से लेकर दो इञ्च तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी भारत और कर्नाटक में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ का काढ़ा, जलोदर और पथरी रोग में दिया जाता है।

सूर्य्यकान्त

नाम—संस्कृत—सूर्य्यकान्त, अग्निगर्भक, दीप्तोपल। हिन्दी—सूर्य्यकान्त, आतशी शीशा। बङ्गला—आतश पोथर। मराठी—सूर्य्यकान्त। गुजराती—अगनचश्मानो कांच। अंग्रेजी—Magnyfying Glass (मेग्नीफाइंग—ग्लास)।

वर्णन—यह एक काँच होता है। जिसमें सूर्य की किरणें पड़ने से वे केन्द्रीभूत होकर दाहक हो जाती हैं। जो सूर्य्यकान्त चिकना, व्रणरहित, तुषरहित और घिसने से आकाश के समान निर्मल हो जाय तथा जिसको धूप में रखने से अग्नि पैदा हो जाय वह उत्तम होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सूर्य्यकान्त गरम, निर्मल, रसायन, वात और कफनाशक और मेधाजनक होता है। इसका पूजन करने से सूर्य सन्तुष्ट होता है।

सेमर [मोचरस]

नाम—संस्कृत—शाल्मलि, रक्तपुष्पा, तूलवृक्ष, मोचनी इत्यादि। हिन्दी—सेमर, मोचरस, कांटिसेमल, रक्त सेमल, पेगून। गुजराती—सेमला, रक्तसेमला। बंगाल—सिमुल, रक्तशिमुल। मराठी—सेमर, सांवरी, काण्टेरी सेमर। अंग्रेजी—Redsilk Cotton Tree (रेड सिल्क काटन ट्री)। लेटिन—Bombex Malabaricum (बाम्बेक्स मलाबारिकम)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्णन---सेमर का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इस वृक्ष के ऊपर मोटे और तिकोने मजबूत कांटे होते हैं। इसकी डालियों के सिरे पर पत्तों के झुमके आते हैं। प्रत्येक झुमके में पाँच से सात तक पत्ते होते हैं हर एक पत्ता चार से लेकर बारह इंच तक लम्बा और एक से लेकर ४ इंच तक चौड़ा होता है। वसन्त ऋतु में इस वृक्ष के ऊपर लाल रंग के बड़े-बड़े फूल आते हैं। इन फूलों की पंखड़ियां भी बड़ी होती हैं। इसके पश्चात् इस वृक्ष पर आक के फलों के समान फल आते हैं। ये फल सूखकर जब फटते हैं तब इनमें से बहुत सा मुलायम रूई निकल कर चारों तरफ उड़ जाती है। यह रूई बंगाल में गादी-तकिये भरने के काम में आती है। इसके बीज काले रंग के होते हैं। इस वृक्ष के गोंद को मोचरस कहते हैं। मोचरस और सहजने का गोंद एक सरीखा होता है। इसलिए बहुत से लोग मोचरस में सहजने का गोंद मिला दिया करते हैं। इसलिए मोचरस को खरीदते समय सावधानी रखनी चाहिये। सहजने का गोंद जड़ और भारी होता है। मोचरस बहुत हलका, भुरभुरा और लाल रंग का होता है यह पानी में डालने से फूल जाता है।

सेमर के नीचे की जड़ को सेमर मूसली कहते हैं। यह ख्याल रखना चाहिए कि औषधि प्रयोग में एक वर्ष से डेढ़ वर्ष तक के छोटे पौधे की जड़ ही काम में लेना चाहिए। इससे बड़े पौधे की जड़ बेकार होती है।

गुण, दोष और प्रभाव----आयुर्वेदिक मत से सेमर मधुर, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, कसैला, शीतल, हलका, स्निग्ध, स्वादिष्ट, रसायन, कफकारक, कामोद्दीपक तथा रक्तपित्त, पित्त सौर रुधिर दोषों को हरता है। इसकी जड़ अथवा सेमर मूसली मीठी, शीतल, पौष्टिक, किञ्चित् मूत्रल, आंतों का संकोचन करनेवाली, पित्तनाशक, शरीर की गरमी को शान्त करनेवाली और सूजन को हरनेवाली होती है। इसकी छाल कसैली, कफनाशक, मूत्रल, पौष्टिक और किञ्चित् ग्राही होती है। इसके फूल—कड़वे, कसैले, शीतल, स्वादिष्ट, रूक्ष, मलरोधक, कफ और पित्त को दूर करनेवाले और रक्त को शुद्ध करनेवाले होते हैं। ये तिल्ली की बीमारी और श्वेत प्रदर में बहुत लाभदायक होते हैं। इसके फल मीठे, शीतल, पचने में हलके, उत्तेजक, मूत्रल, पौष्टिक, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक, धातु-परिवर्त्तक, रक्त को शुद्ध करनेवाले और मूत्रेन्द्रिय की श्लैष्मिक झिल्लियों पर बहुत लाभदायक प्रभाव डालनेवाले होते हैं।

सेमर का गोंद अर्थात् मोचरस कसैला, मलरोधक, बलवर्धक, पौष्टिक, कामोद्दीपक, वर्ण को उज्ज्वल करनेवाला, बुद्धिवर्द्धक, शीतल, अवस्था-स्थापक, भारी, स्वादिष्ट, वीर्यवर्द्धक, रसायन, स्निग्ध, कफकारक, गर्भस्थापक, वातनाशक, तथा अतिसार, प्रवाहिका, रक्त रोग, पित्त, दाह, आमातिसार और रक्तातिसार को दूर करनेवाला होता है। इसको एक मास तक सेवन करने से अशुद्ध पारद के विकार दूर होते हैं।

सेमर के फूलों का, घी और सेंधानमक से बनाया हुआ शाक असाध्य प्रदर रोग को हरता है। कफ और रक्तपित्त को दूर करता है।

यूनानी मत से सेमर का गोंद अथवा मोचरस, कड़वा संकोचक, रक्तस्रावरोधक तथा कामोद्दीपक होता है। यह पित्तदोष, रक्तविकार, दाह और मुखशोथ में उपयोगी होता है।

मोचरस जोरदार संग्राहक लेकिन स्निग्ध होता है। सेमर की मूसली संग्राहक, कामोद्दीपक, पौष्टिक और अवस्थास्थापक होती है। कामेन्द्रिय के ऊपर इसकी कुछ उत्तेजक क्रिया होती है। सेमर के कोमल फल उत्तेजक, मूत्रल और खाँसी को नष्ट करनेवाले होते हैं। मूत्रेन्द्रिय के ऊपर इनकी कुछ शामक क्रिया होती है।

मोचरस जीर्ण अतिसार, संग्रहणी और आम के रोगों में बहुत उपयोगी होता है। अत्यार्तव में भी इसका उपयोग लाभदायक होता है। सेमर मूसली को पेज बनाकर सुजाक तथा अतिसार से उत्पन्न दुर्बलता को दूर करने के लिए दी जाती है। यह बलवर्द्धक और कामोद्दीपक होती है। इसके कोमल फल मूत्रकृच्छ्र में बहुत फायदेसन्द होते हैं।

सेमर के फूल, खसखस और शक्कर तीनों चीजों को बकरी के दूध में औटाकर दिनमें तीन बार देने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। इसके पत्तों को पीस कर गठानों की सूजन पर बांधा जाता है।

इसका गोंद मोचरस एक उत्तम कामोद्दीपक वस्तु है। इसमें टैनिक और गैलिक एसिड बहुत बड़ी मात्रा में रहती है और जिन रोगों में संकोचक औषधियों की आवश्यकता होती है उनमें यह बहुत सफलतापूर्वक दिया जा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सकता है। इसके गोंद में पौष्टिक और जीवन विनिमय क्रिया को शुद्ध करनेवाले तत्त्व भी रहते हैं। इसका उपयोग अतिसार, रक्तातिसार और अत्यधिक रजस्राव में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

इसकी जड़ में उत्तेजक और पौष्टिक तत्त्व रहते हैं। इसके नवीन पौधे की जड़, छाया में सुखाकर चूर्ण करके खिलाने से उत्तम कामोद्दीपक पदार्थ का काम करती है। नामर्दी को दूर करने के लिय भी इसका उपयोग किया जाता है।

इसके तीन बरस से कम उम्र वाले पौधे की जड़ जो कि 'सेमरकन्द' के नाम से प्रसिद्ध है तथा मध्यप्रान्त में एक संकोचक और मज्जातंतुओं को बल देनेवाले पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती है।

कम्बोडिया में इसकी छाल एक रक्तस्राव-रोधक वस्तु की तरह गर्भाशय से होनेवाले अनियमित रक्तस्राव को रोकने के लिए उपयोग में ली जाती है। इसकी जड़ मूत्रल मानी जाती है और इसका गोंद पानी में मिलाकर आवश्यकता पड़ने पर सुजाक में दिया जाता है।

कोमान के अनुसार सेमर का गोंद संकोचक, शान्तिदायक और रक्तस्राव को रोकनेवाला होता है। इसको प्राचीन रक्तातिसार के दो केसों पर आजमाया गया। फुफ्फुस सम्बन्धी क्षय में कफ के साथ जानेवाले खून में, इंफ्लूएंजा में, रक्त की वमन में, अत्यधिक रजस्राव में तथा प्राचीन रक्तातिसार में इसका प्रयोग किया गया और उसमें सफलता हुई। इसकी ४० ग्रेन की दो या तीन मात्रा देने से दस्त और वमन के साथ तथा कफ के साथ जानेवाला खून बन्द हो गया। लेकिन तीव्र और प्राचीन रक्तातिसार में इसका असर बहुत धीरे होता है और इसका असर तीव्र करने के लिए इसमें कूड़े का छाल, अनार का छिलका इत्यादि चीजें मिलानी पड़ती हैं।

सुश्रुत के मतानुसार सेमर के फूल और फल दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर सांप और बिच्छू के विष पर देने से लाभ होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सांप और बिच्छू के विष पर निरुपयोगी है।

उपयोग—रक्तपित्त—सेमर के फूलों के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से रक्तपित्त मिटता है।

प्लीहा—सेमर के फूलों को रात भर पानी में भिगाकर मल-छान कर उसमें राई का चूर्ण मिलाकर पिलाने से प्लीहा की वृद्धि मिटती है।

सुरा प्रमेह—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से सुरा प्रमेह मिटता है।

चेचक—सेमर के तीन चार बीजों को निगलने से चेचक बहुत कम निकलती है अथवा बिलकुल नहीं निकलती।

रक्त प्रदर—रसौत को पानी में गलाकर छानकर उसमें मोचरस मिलाकर पीने से रक्त प्रदर मिटता है।

पेशियों की सूजन—सेमर के पत्तों की लुगदी बाँधने से पेशियों की सूजन मिटती है।

मूत्रकृच्छ्र—सेमर के छोटे वृक्ष की जड़ की अन्त की नोकों को पीसकर दूध-मीश्री के साथ पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है और इसके चूर्ण की फक्की देने से आमातिसार मिटता है।

बच्चों का अतिसार—मोचरस को एक से दो माशे तक की मात्रा में मिश्री मिलाकर देने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

नपुंसकता—इसकी छोटी जड़ों को छाया में सुखाकर उनका पाक बनाकर खाने से नपुंसकता तथा लिङ्ग की शिथिलता मिटकर प्रबल कामोत्तेजना होती है।

खूनी बवासीर—सेमर के सूखे फूल, पोस्त के दाने और शक्कर इन तीनों चीजों को बकरी के दूध में औटाकर गाढ़ा करके आठ २ माशे की मात्रा में दिन में तीन बार लेने से खूनी बवासीर और रक्तपित्त मिटता है।

बनावटें—प्रदरनाशक घृत—हरे आंवले का रस, बिदारीकन्द का रस, सेमर के फूलों का रस, शतावरी का रस, गाय का दूध और गाय का घी ये सब चीजें अस्सी २ तोला लें तथा डामर की जड़ें, गन्ने की जड़ें, डाभ की जड़ें, कांस की जड़ें और मूंज की जड़ें—ये पाँचों चीजें सोलह २ तोला लेकर ४ सेर पानी में औटावें। जब एक सेर (अस्सी तोला) पानी बाकी रह जाय तब उसे छानकर उपरोक्त आँवले के रस इत्यादि में मिला दें और सबको इकटठे करके हलकी आँच पर पकावें, जब सब चीजें जलकर केवल घी मात्र शेष रह जाय, तब उतार कर छान लें

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

और उसमें मुलहठी, निसोत, यवक्षार और विधायरे का चूर्ण चार-चार तोला और शक्कर बत्तीस तोला बोतलों में भर लें। बिधायरा अगर न मिले तो उसकी जगह समुद्रशोष की लकड़ी का चूर्ण डाल दें।

इस घी में से प्रतिदिन सवेरे शाम एक से दो तोला तक घी गरम दूध में डालकर पीना चाहिए और खट्टे, खारे चरपरे, तीक्ष्ण तथा गरम पदार्थों से परहेज करना चाहिए। इस घी के कुछ दिनों तक सेवन करने से स्त्रियों के प्रदर में रामबाण-तुल्य फायदा होता है अगर और भी जल्दी लाभ लेना हो तो नीचे लिखे बाह्य उपचार को भी साथ में चालू रखना चाहिए।

प्रदरनाशक सोगठा—माजूफल, फुलाई हुई फिटकरी, लोध, धाय के फूल, बबूल के कोमल पत्ते, आँवला, कमल गट्टा, जामुन की गुठली, हीराकसी, गूलर के कच्चे सूखे फल, बड़ की कोंपलें, अडूसे के पत्ते, अशोक की छाल, अनार के फल का छिलका, वायविडंग, इन्द्रजौ, पलास का गोंद, चमेली के पत्ते, कत्था, काला सुरमा तथा कपूर इन सब चीजों को समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके अरणी के रस में खरल करके छोटे बेर के समान गोलियाँ बना लेना चाहिए। इन गोलियों के सूखने पर एक गोली लेकर उसको पीसकर थोड़ा गुड़ मिलाकर उसे पुरानी रुई में रखकर उस रुई की बत्ती या गोली बनाकर योनि मार्ग में धारण करना चाहिए। (जङ्गलनी जड़ी बूटी)

उपरोक्त दोनों प्रयोगों को कुछ दिनों तक साथ करने से प्रदर रोग में आशातीत लाभ होता है।

सेव

नाम—संस्कृत—सेव, सिञ्चीतिका फल, मुष्टिप्रमाण, वदर। हिन्दी—सेव। बंगला—सेव। मराठी—सेव। गुजराती—सेव। शिमला—पालो। पंजाब—पालु, सेवु, शेव, सुंत, चुग इत्यादि। सिंध—सुफ। अरबी—तुफ्फाह। फारसी—सेव। इंग्लिश—Apple Tree (अपील ट्री)। लेटिन—Pyrus Malus (पायर्स मेलस)।

वर्णन—सेव का वृक्ष मध्यम कद का होता है। इसके पत्ते अमरूद के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ चौड़े होते हैं। इसके फूलों का रंग सफेद होता है और उनमें लाल छींटे होते हैं। इसके फल का रंग कच्ची हालत में हरा अर्द्धपक्व अवस्था में पीला और पकने पर लाल होता है। सेव का फल सारे भारतवर्ष में बड़े चाव से खाया जाता है और इसे सब जानते हैं। इसके वृक्ष काश्मीर में बहुत होते हैं और काश्मीर का सेव अपनी उत्तमता और सरसता के कारण सारी दुनिया में मशहूर है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सेव, वात-पित्तनाशक, पौष्टिक, कफकारक, भारी, रस और पाक में मधुर, शीतल, रुचिकारक और वीर्यवर्द्धक होता है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता, सिर्फ भावप्रकाश में इसका उल्लेख मिलता है। इससे अनुमान होता है कि मुसलमानी युग में इसका वृक्ष भारतवर्ष में लाया गया हो।

सेव ठण्डा, सुपच्य, रुचिवर्द्धक, स्वास्थ्यकर और पौष्टिक होता है। यकृत और गुर्दे के रोगों में यह बहुत लाभदायक है। इसमें विटामिन 'बी' काफी तादाद में रहता है। पौने दो छटाँक सेव में ४० यूनिट विटामीन 'बी' पाया जाता है।

अमेरिका में सेव के वृक्ष की छाल का शीत निर्यास पित्त ज्वर, पार्यायिक ज्वर और मलेरिया ज्वर में बहुत सफलता के साथ दिया जाता है।

सड़े हुए सेव का पुलटिस बनाकर कमजोर और वातग्रस्त आँखों (Rheumatic Eyes) पर बाँधा जाता है।

फ्रांस में सेव का पुलटिस बनाकर सूजी हुई आँखों पर बाँधते हैं। सेव को कुचलकर उसकी लुगदी आँखों के ऊपर बाँधते हैं।

कब्जियत को दूर करने के लिए सेव रात को सोते समय खाया जाता है। चाहे वह पका हो चाहे कच्चा किसी भी स्थिति में प्रशंसनीय फायदा करता है।

खट्टे सेव का रस मस के ऊपर रगड़ने से वे धीरे २ नष्ट हो जाते हैं।

उपयोग—बिच्छू का विष—सेव के पत्तों को औटाकर पिलाने से बिच्छू का विष उतरता है।

अतिसार—कच्चे सेव में ग्राहीधर्म होने से अतिसार में लाभदायक होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आँख की पीड़ा—सेव को पीसकर लेप करने से पित्त से होनेवाली आँख की पीड़ा मिटती है।

वमन—कच्चे सेव के रस में सेंधा नमक मिला कर पिलाने से वमन बन्द होती है।

खाँसी—पके हुए सेव के रस में मिश्री मिलाकर पिलाने से सूखी खाँसी और मूर्छा मिटती है।

पित्तोन्माद—सेव के शरबत में ब्राह्मी का चूर्ण मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

मस्तिष्क की कमजोरी—सेव का मुरब्बा खिलाने से मस्तिष्क को तथा हृदय को शक्ति मिलती है।

बिच्छू का विष—सेव के रस में ४ रत्ती कपूर मिलाकर पिलाने से बिच्छू का विष उतरता है अगर न उतरे तो आधे-आधे घण्टे से दो-तीन बार पिलाना चाहिए।

रक्तातिसार—पोस्त के दानों के क्वाथ में सेव का शरबत मिला कर पिलाने से रक्तातिसार मिटता है।

गुर्दे की पीड़ा—गुर्दे की पीड़ा में सेव का खिलाना लाभदायक होता है।

निद्रानाश—अनिद्रा के रोगी को सेव का फल खिलाने से नींद आने लगती है।

अफीम का व्यसन—अफीम या मदिरा के व्यसन वाले को सेव का फल खिलाने से धीरे-धीरे व्यसन छूट जाता है।

सोना

नाम—संस्कृत—सुवर्ण, स्वर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, इत्यादि। हिन्दी—सोना, स्वर्ण। गुजराती—सोनुं। मराठी—सोनें। बंगला-सोना। तेलगू—भङ्गारम्। फारसी-तिला, जर। अरबी-जहब। इंग्लिश—Gold (गोल्ड)। लेटिन—Aurum (एरम)।

वर्णन—सोना एक खनिज द्रव्य है, जो सारी दुनिया में जेवर बनाने तथा सिक्के ढालने के काम में आता है। इसका परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

सोने की परीक्षा—जो सोना तपाने पर लाल सुर्ख हो, कसौटी के ऊपर कसने से केशरी रंग का हो जाय, चांदी और तांबे से रहित हो और स्निग्ध, नरम और भारी हो, ऐसा सोना उत्तम और औषधि के काम में लेने योग्य होता है। सफेदी लिए मैले रंग का, कठोर, रूखा, तपाने पर काला पड़ जाने वाला, ताम्बे और चाँदी की मिलावट-वाला, हलका और चोट मारने से टूट जानेवाला सोना त्याज्य होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सोना शीतल, वीर्यवर्द्धक, भारी, कामोद्दीपक, रसायन, स्वादिष्ट, कड़वा, कसैला, पचने में स्वादिष्ट, पवित्र, पौष्टिक, नेत्रों को हितकारी, तथा बुद्धि, स्मरण शक्ति और मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ानेवाला होता है। यह हृदय को बल देता है, कान्ति और आयु को बढ़ाता है, वाणी को शुद्ध करता है, क्षय रोग में बहुत लाभदायक है, जङ्गम और स्थावर विषों को नष्ट करता है तथा उन्माद, त्रिदोष, ज्वर और शोष को दूर करता है।

जिस प्रकार शुद्ध किया हुआ और विधिपूर्वक भस्म किया हुआ स्वर्ण अनेक दिव्य गुणों से युक्त होता है। उसी प्रकार अशुद्ध या बिना विधि से मरा हुआ स्वर्ण बल और वीर्य को नष्ट करनेवाला, रोगजनक और मृत्युकारक होता है।

सोने में से वट्टा निकालने की विधि—जो सोना आग में तपाने पर काला पड़ जाय उसमें ताम्रादि धातुओं की मिलावट समझना चाहिए। इस वट्टे को निकालने के लिए निम्न विधि का प्रयोग करना चाहिए।

साम्भर नमक और लाल ईंट का चूर्ण इन दोनों को समान भाग लेकर पीसकर कपड़-छान कर लें। फिर एक बड़ा उपला लेकर उस पर चूर्ण को बिछाकर उस पर सुवर्ण-पत्रों को जमा दें। फिर उन स्वर्ण-पत्रों पर उस चूर्ण की तह लगाकर उस पर स्वर्णपत्रों की दूसरी तह लगा दें। इसी क्रम से सब सुवर्णपत्रों को जमा दें और ऊपर से एक ऊपला और रख दें। दोनों बगल में उपरोक्त चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर लगा दें, जिससे स्वर्ण-पत्र कहीं से भी दिखलाई न पड़े। इस सम्पुट को ऐसे घर में जहाँ हवा न लगती हो ले जाकर दो सेर ऊपलों के अन्दर रख कर आग दें। शीतल होने पर देखें, यदि सम्पुट में किसी जगह कुछ लाली दीख पड़े तो समझना चाहिए कि अभी बट्टा नहीं निकला है। इसलिए फिर अग्नि दें, स्वांग-शीतल होने पर सम्पुट को खोल कर देखें यदि स्वर्ण-पत्र काले निकलें तो फिर उसी प्रकार सम्पुट बनाकर अग्नि दें, इस प्रकार पांच-छः बार अग्नि देने से सब बट्टा जल जावेगा।

सोने को शुद्ध करने की विधि—दूसरी सब धातुओं की तरह सोने के पत्रों की भी तिल के तेल, मट्ठा,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गोमूत्र, कांजी और कुलथी के बीजों का काढ़ा, इन पांच चीजों में सात-सात बार गरम करके बुझा लेने से सामान्य शुद्धि हो जाती है। विशेष शुद्धि करने के लिए कांजी, नीम्बू का रस, मठा और गाय का दूध इन चार चीजों में उनको सात २ बार बुझा लेना चाहिए। स्वर्ण में तांबे के समान अधिक दोष नहीं होते हैं। इसलिए इसकी केवल सामान्य अथवा केवल विशेष शुद्धि से भी काम चलता है।

सोने की भस्म की विधि—शुद्ध सोना ४ तोला, हिंगुलोत्थ पारद १२ तोला, इन दोनों को खूब घोटकर पिट्ठी बना लें, पिट्ठी होने पर घीगुवार का रस, नीम्बू का रस और सेंधा नमक इन तीनों चीजों के साथ उस पिट्ठी को खूब घोटें, दो दिन घोटने के पश्चात् पानी में उस पिट्ठी को धो डालें, जब पिट्ठी खूब कोमल हो जाय तब केवल घीगुवार के रस में उसे दो दिन तक घोटें। फिर उस पिट्ठी में १६ तोले शुद्ध गंधक मिलाकर सब की कज्जली कर लें, फिर उस कज्जली में तीन भावना नीम्बू के रस की देकर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में कज्जली को भर कर सिन्दूर रस की तरह बालुकायन्त्र में दो दिन तक पकावें, स्वांगशीतल होने के पश्चात् शीशी के गले पर लगे हुए स्वर्ण सिन्दूर को निकाल कर रख ले और शीशी के तल भाग में स्थित स्वर्णभस्म को निकाल कर घीगुवार के रस में घोट कर टिकिया बना लें। उसके पश्चात् टिकिया सूख जाने पर सरावसम्पुट में रखकर कुक्कुट पुट में फूँक दें। इतने प्रयोग के पश्चात् स्वर्णभस्म तैयार हो जाती है और वह काम में लेने लायक हो जाती है। मगर यदि उसमें फिर भी चमक मालूम हो और उस चमक को दूर करना हो तो उपर्युक्त सभी विधि को एक बार और कर लेने से वह निश्चन्द्र हो जायगी। मगर चमकवाली स्वर्णभस्म भी हानिकारक नहीं होती, यह बात ध्यान में रखने की है। हाँ, निश्चन्द्र होने से उसके गुण जरूर बढ़ जाते हैं।

स्वर्णभस्म की दूसरी विधि—चार तोले शुद्ध पारा और दो तोले शुद्ध सोने के पत्र दोनों को दो दिन तक घोटकर पिट्ठी बना लें, फिर चार तोले शुद्ध गन्धक और चार तोले शुद्ध संखिया इन दोनों को डालकर दो पहर तक मर्दन करके कज्जली कर लें, इस प्रकार कुल चौदह तोले कज्जली को कपड़मिट्टी की हुई शीशी में रखकर बालुका यन्त्र में पकाना चाहिए। पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि इसमें से निकलनेवाले धुएँ से शरीर को बचाया जाय, क्योंकि संखिया का धुआँ शरीर के लिए हानिकारक होता है। स्वांगशीतल होने पर गले में लगे हुए मल्ल-सिन्दूर को निकाल लें और शीशी के तलभाग में लगी हुई सुवर्णभस्म को भी निकाल लें।

इस विधि से तैयार की हुई स्वर्णभस्म संखिया के योग से बहुत गरम होती है। इसलिए शीत ज्वर, कफजन्य रोग तथा वात व्याधियों में तो यह बहुत गुणकारी होता है, मगर पित्तजन्य व्याधियों में तथा कामोद्दीपन के लिए इसका प्रयोग करने के पूर्व अगर इसको शीशी में भरकर केले की जड़ में एक महीने तक गाड़ दिया जाय तो इसकी गरमी शान्त हो जाती है।

सुवर्ण और क्षयरोग—क्षयरोग के समान भयंकर और दुर्जय रोग में स्वर्ण का उपयोग बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। जिस प्रकार आयुर्वेद के आचार्यों ने क्षयरोग में सुवर्ण के उपयोग की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है उसी प्रकार आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्रियों ने भी इस भयङ्कर व्याधि में सुवर्ण की उपयोगिता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। जिस प्रकार देशी चिकित्सक सुवर्णभस्म अथवा उसके योग से बनी हुई औषधियाँ क्षय के रोगियों को देते हैं, उसी प्रकार पाश्चात्त्य चिकित्सकों ने सुवर्ण के इंजेक्शन तथा दूसरी बनावटें क्षय रोगियों के लिए तैयार की हैं और उनका प्रचुर मात्रा में उपयोग भी होता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि स्वर्ण ने क्षयरोग के ऊपर विजय प्राप्त कर ली है मगर इतना जरूर कहा जा सकता है कि क्षयरोग की चिकित्सा में यह मनुष्य के लिए सहायक अवश्य हुआ है।

इसका कारण यह है कि स्वर्ण तेजस्वी होते हुए भी एक सौम्य पदार्थ है। यह हृदय, मस्तिष्क, स्नायुजाल, मूत्रपिण्ड और शरीर के प्रत्येक अङ्ग पर एक प्रकार का अनुकूल और स्फूर्तिदायक प्रभाव डालता है जिससे शरीर का ओज और कान्ति बढ़ती है, शरीर में स्फूर्ति पैदा होती है और मन में उमंग पैदा होती है, रक्त-संचालन की क्रिया में रोग प्रतिरोधक शक्ति (Immunity power) बढ़ती है जिससे रोग के कीटाणु उस रक्त में पनप नहीं सकते। मतलब यह कि आर्थिक जगत् की तरह ही चिकित्सा क्षेत्र में भी सोना एक दिव्य वस्तु है। दूसरा एक बात और महत्त्व की है। भारतीय चिकित्साशास्त्र में सुवर्ण की और पारद की बड़ी दोस्ती है। एक के मेल से दूसरी वस्तु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

की शक्तियाँ अनेकों गुना बढ़ जाती हैं फिर भी ये दोनों वस्तुएँ आपस में मिलने नहीं पातीं। आधुनिक रसायन विज्ञान उनका मिलना सम्भव नहीं मानता मगर हमारे प्राचीन चिकित्सा ग्रन्थों में ऐसी बातों पर भी विश्वास किया गया है कि सोना और पारद मिल जाते हैं और ऐसे मिल जाते हैं कि पारद का वजन तक नहीं बढ़ता। तभी जाकर पारद की वास्तविक सिद्धि होती है और वह रोग-नाशक शक्ति पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है। यह एक मोटी सी बात है कि जिन वस्तुओं का केवल रासायनिक क्रिया पूर्ण मिलन ही जब उनकी शक्तियों को इतना बढ़ा देता है तब उनका हमेशा का मिश्रण कितना शक्तिशाली होता होगा, मगर अभी तो यह पद्धति अन्धकार में है।

उपयोग—राजयक्ष्मा—अडूसे के पत्तों के रस और शहद के साथ स्वर्णभस्म को चटाने से राजयक्ष्मा रोग में लाभ होता है।

(२) सितोपलादि चूर्ण में मोती की पिष्टी, गिलोयसत्त्व और स्वर्णभस्म मिलाकर चटाने से फेफड़ों के क्षय में लाभ होता है।

स्मरणशक्ति की कमजोरी—सोने के वर्कों को वच और शहद के साथ चटाने से स्मरणशक्ति बढ़ती है।

उन्माद—ब्राह्मी, शङ्खाहुली और शहद के साथ स्वर्णभस्म को देने से उन्मादरोग में बहुत लाभ होता है।

खाँसी—दूध के साथ स्वर्णभस्म को लेने से राजयक्ष्मा की सूखी खाँसी मिटती है।

नपुंसकता—सोने के वर्कों से यूनानी के प्रसिद्ध योग 'माजून तिला' को बनाकर सेवन करने से नपुंसकता मिटती है तथा शरीर के तेज और मस्तिष्क का बल बढ़ता है।

विषविकार—सोने के वर्कों को शहद के साथ चटाने से सब प्रकार के विषविकार में लाभ होता है मगर जब तक विष न उतरे थोड़ी २ देर में बार २ चाटना चहिए।

कान्ति—सोने की भस्म को केशर के साथ लेने से चेहरे की कान्ति बढ़ती है।

बल—इसको दूध के साथ लेने से शरीर का बल बढ़ता है।

पुरुषार्थ—जलभाँगरे के रस के साथ सुवर्णभस्म को लेने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

त्रिदोष—सोने की भस्म को सोंठ, लौंग और मिरच के साथ देने से त्रिदोष या सन्निपात में पैदा हुआ उन्माद मिटता है।

सर्वरोग—भिन्न २ प्रकार के उचित अनुपानों के साथ इसका सेवन करने से सभी प्रकार के रोगों में लाभ होता है। प्रत्येक औषधि इसके मेल से प्रभावशाली हो जाती है।

मात्रा—सोने की भस्म की मात्रा बड़े आदमी के लिए आधी रत्ती से दो रत्ती तक और बच्चों के लिए दो चावल की।

अशुद्ध स्वर्ण की शान्ति—अशुद्ध स्वर्ण को खाने से पैदा हुए विकारों को नष्ट करने के लिए आँवले के चूर्ण को शहद के साथ तीन दिन तक दो-दोले की मात्रा में चाटना चाहिए।

बनावट—स्वर्ण रसायन-सुवर्ण भस्म १ तोला, चन्द्रोदय (षड्गुण गन्धक जारित) छः माशे, सुवर्ण वंग दो तोला, मोती पिष्टी १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, गिलोयसत्त्व दो तोला, तथा छोटी इलायची, वंशलोचन, पीपर, मुलहठी और बायबिडंग इन सब चीजों को चार २ तोला और छिलका निकाली हुई बादाम की गिरी साढे सत्ताइस तोला लेकर सबको अच्छी तरह पीसकर एक सौ दस तोला उत्तम शहद में मिलाकर काँच की चौड़े मुह की शीशी में रख लेना चाहिए।

इस सुवर्ण रसायन को दो माशे से छः माशे तक की मात्रा में लेने से मनुष्य की जीवनीशक्ति (Vitality) तथा रोग-प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) बढ़ती है, उसके मस्तिष्क, हृदय ज्ञानतंतु आमाशय और फेफड़ों को बल मिलता है। उसकी स्त्रियों के साथ रमण की शक्ति बढ़ती है तथा उसकी बल, कान्ति, ओज और प्रतिभा का विकास होता है। यह एक दिव्य रसायन है।

सोनामक्खी

नाम—संस्कृत—स्वर्णमाक्षिक, पीतमाक्षिक, मधुधातु, स्वर्णवर्ण इत्यादि। हिन्दी—सोनामक्खी। बङ्गला—स्वर्णमाक्षिक। गुजराती—सोनामाखी। मराठी—सोनामुखी। अरबी—मुर्कशीशाजहबी। इंग्लिश—Iron Sulphide (आयरन सल्फाइड)। लेटिन—Ferri Salphuretum (फेरी सल्फ्यूरेटम)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्णन—सोनामक्खी एक उपधातु होती है। भारतवर्ष में कई स्थानों पर खदानों से निकलती है, एक प्रकार के काले रंग के पत्थर के अन्दर पीले रंग की धातु होती है, जिसमें पत्थर का अंश कम और धातु का अंश अधिक होता है वह सोनामक्खी उत्तम होती है। जिस सोनामक्खी में सोने के समान झलक हो और जो वजन में भारी हो वह सोनामक्खी उत्तम होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सोनामक्खी स्वादिष्ट, कड़वी, कामोद्दीपक, रसायन, नेत्रों को हितकारी, बस्तिरोग नाशक तथा कण्ठरोग, पाण्डुरोग, प्रमेह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, कण्डू और त्रिदोष को नष्ट करनेवाली होती है।

सोनामक्खी, कसैली, वीर्यवर्द्धक, स्वरशोधक, हलकी, रसायन, नेत्रों को हितकारी तथा कुष्ठ, सूजन, बवासीर, प्रमेह, बस्ति की पीड़ा, पाण्डुरोग, कुष्ठ, उदररोग, विष और क्षयरोग को नाश करती है।

किंचित् सुवर्ण मिश्रित होने से यह स्वर्णमाक्षिक कही जाती है। यह सोने की उपधातु होती है और स्वर्ण भस्म के अभाव में कभी-कभी वैद्य लोग इसका प्रयोग करते हैं।

अशुद्ध सोनामक्खी मन्दाग्नि, बलनाश, नेत्र रोग, कुष्ठ, गण्डमाला, व्रण इत्यादि अनेक प्रकार के उपद्रव करती है। इसलिए इसको हमेशा शुद्ध करके तथा भस्म करके उपयोग में लेना चाहिए।

सोनामक्खी को शुद्ध करने की विधि—एक सेर सोनामक्खी, आधा सेर सेंधानमक और डेढ़ सेर अरण्डी का तेल तीनों को कड़ाही में डालकर उस कड़ाही को चूल्हे पर चढ़ाकर तीव्र अग्नि देना चाहिए। और लोहे की कलछी से चलाते रहना चाहिए। जब अरण्डी का तेल बिलकुल जल जाय तब उसमें डेढ़ सेर त्रिफले का काढ़ा डालकर फिर तेज आंच दें और लोहे की कलछी से हिलाते जायँ। त्रिफले का काढ़ा जलने पर डेढ़ सेर केले की जड़ का रस और उसके जलने पर डेढ़ सेर नीबू का रस भी उसमें जला डालें, नीबू का रस जल जाने पर एक प्रहर की तीव्र आँच देना चाहिए।

स्वांगशीतल होने पर शुद्ध स्वर्णमाक्षिक को कढ़ाही से निकाल कर पानी के कुण्डे में डालकर दोनों हाथों से मल डालें जिससे सब नमक पानी में घुल जाय, जब पानी नितर जाय और स्वर्णमाक्षिक पेंदे में बैठ जाय तब धीरे-धीरे पानी उस खारे पानी को नीचे गिरा दें और दूसरा पानी भर दें। इस प्रकार तीन चार बार उसे पानी से धो डालें जिससे नमक का सब अंश निकल जाय। फिर सोनामक्खी को लोहे की खरल में कूटकर कपड़छान कर लें। इस क्रिया से सोनामक्खी शुद्ध हो जाती है।

सोनामक्खी को भस्म करने की विधि—स्वर्णमाक्षिक पाव भर, शुद्ध गन्धक पावभर और पावभर हिंगुलोत्थ पारद, तीनों की कज्जली करके नीम्बू के रस की एक-दो भावना देकर नलिका डमरू यन्त्र में पकाने से तल भाग में सोनामक्खी की भस्म और ऊपर के भाग में रससिन्दूर मिलेगा। स्वाङ्गशीतल होने पर उस भस्म को नीम्बू के रस में घोट-घोटकर तीन बार सुखा लें फिर उसकी टिकिया बनाकर तीन बार गजपुट में फूंक देने से सोनामक्खी की उत्तम लाल रङ्ग की भस्म तैयार हो जाती है। (रसायनसार)

स्वर्णमाक्षिक की इस भस्म को धूप में ले जाकर देखे अगर उसमें चमक बिलकुल न रही हो तो शुद्ध भस्म समझें। चमक रह गई हो तो और भी गजपुट में फूंकना चाहिए।

अशुद्ध सोनामक्खी के विकारों की शान्ति—अशुद्ध सोमामक्खी के विकारों को शान्त करने के लिए कुलथी का काढ़ा, अनार के छिलकों का काढ़ा तथा रोगन बादाम का उपयोग करना चाहिए।

उपयोग—पित्त प्रमेह—सोनामक्खी की भस्म को गिलोयसत अथवा शहद के साथ लेने से पित्त प्रमेह मिटता है।

ज्वर—अतीस के चूर्ण के साथ सोनामक्खी की भस्म को लेने से ज्वर छूटता है।

मन्दाग्नि—पीपल और शहद के साथ सोनामक्खी की भस्म को लेने से मन्दाग्नि मिटती है।

अतिसार—सोंठ के साथ सोनामक्खी की भस्म को लेने से अतिसार मिटता है।

सोनापाती

नाम—तामिल—सोनापाती, नागसम बागम। तेलगू—पोचा गोटला। सतारा—पुत्तैना। लेटिन—Tecoma stans (टेकोमा स्टेन्स)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्णन—इस वनस्पति की खेती दक्षिणी भारत के कुछ भागों में की जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—सतारा जिले में इस वनस्पति की जड़ साँप के विष, बिच्छू के विष तथा जहरीले चूहे के विष की एक उत्तम ओषधि मानी जाती है। इसकी जड़ को नीम्बू के रस के साथ अथवा नीम्बू का रस न मिलने पर पानी के साथ पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाते हैं और उसको एक टेबल स्पून या बड़े चम्मच की मात्रा में थोड़ी-थोड़ी देर में पिलाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार साँप और बिच्छू के विष पर यह वनस्पति निरुपयोगी होती है।

सोनवल्ली

नाम—संस्कृत—सूर्य्यावर्त्त। हिन्दी—सोनवल्ली, सुबाली। मराठी—सुरावर्त्त। पंजाब—निलन, टप्पल-बूटी। सिंध—सोनवल्ली। गुजराती—काली ओखराड़। इंग्लिश—Turnsole (टर्नसाल) लेटिन—Chrozophore Rottleri (क्रोफ्रोफोरी रोटलेरी)।

वर्णन—यह एकवर्षजीवी वनस्पति होती है, इसके पत्ते मांसल और मुलायम होते हैं। ये ३-२ से लेकर ६-३ सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके बीज ४ मिलीमीटर लम्बे, चमकदार और रुपहले होते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी पश्चिमी भारत, उत्तरी भारत और मध्यभारत में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति वामक, तीव्र विरेचक और क्षय पैदा करनेवाली होती है। यूरोप में इसके बीज एक विरेचक वस्तु की तरह उपयोग में लिए जाते हैं। इस पौधे में लिटमस (Litmus) नामक एक प्रकार का रङ्गदार द्रव्य पाया जाता है।

सोयाबीन

नाम—हिन्दी—सोयाबीन। लेटिन—Soja Hispeda (सोजा हिस्पिडा)।

वर्णन—आधुनिक संसार में जिन कुछ वनस्पतियों ने सारे मानव समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है तथा जो वस्तुएँ मानवीय शरीर की जीवन रक्षा के लिए बहुमूल्य साबित हुई हैं उनमें सोयाबीन भी एक है। यह एक प्रकार का दालदार अन्न होता है। इसका पौधा मटर के पौधे की तरह होता है तथा इसकी फली और इसके बीज भी मटर से ही मिलते-जुलते होते हैं। अन्दर इतना ही होता है कि सोयाबीन के बीजों में तेल काफी मात्रा में पाया जाता है मगर मटर के बीजों में तेल नहीं रहता।

इतिहास—सोयाबीन का मूल उत्पत्ति स्थान चीन है। चीन की पुरानी किताबों में इसका नाम सोया या सोजा लिखा है और इसी नाम के अपभ्रंश से संसार की सब भाषाओं में इसका नामकरण हुआ है। आज से करीब ६००० छः हजार वर्ष पूर्व चीन में 'शेननंग' नामक राजा राज्य करता था। यह राजा हर साल भारी गाजे-बाजे और उत्सव के साथ सोयाबीन को बोता था और उस दिन सारे चीन में त्योहार मनाया जाता था। इससे पता चलता है कि करीब सात हजार वर्षों से सोयाबीन चीन-निवासियों का प्रधान भोजन रहा है।

सोयाबीन करीब १२०० प्रकार का होता है और चीन में इसके सैकड़ों नाम हैं। रङ्ग भेद से यह काला, हरा और पीला तीन प्रकार का होता है। इसका बीज देखने में मटर की तरह गोल, चपटा, अण्डाकृति मगर दबा हुआ होता है। पीले रङ्ग का सोयाबीन देखने में, खाने में और गुणों में सर्वोत्कृष्ट होता है।

पूर्वी एशिया में सोयाबीन हमेशा से पैदा होता रहा है। चीन, कोरिया, मंगोलिया, मंचूरिया और जापान में यह बहुत प्राचीन काल से पैदा होता है। मगर चीन और जापान के लोगों के सिवा आज से चालीस वर्ष पहले तक बाहरी दुनिया को इसका पता न था। उन्हीं दिनों जापान से कुछ लोगों ने नमूने के तौर पर इसको इंग्लैण्ड भेजा, जब इंग्लैण्ड में इसकी रासायनिक परीक्षा की गई तो इसमें मनुष्य शरीर के लिए उपयोगी अनेक पदार्थों का पता लगा। तब से यूरोपीय देशों में इसकी मांग बढ़ने के साथ ही इसकी खेती को भी प्रोत्साहन मिला और अब तो यह अमेरिका, अफ्रिका, रूस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, भारत इत्यादि संसार के सब देशों में पैदा होने लगा है। फिर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भी आज सारा संसार जितना सोयाबीन पैदा करता है उस सबसे अधिक अकेले मंचूरिया में पैदा होता है। सन् १९२७ में अकेले मंचूरिया में १४८५ लाख मन सोयाबीन पैदा हुआ था।

गुण, दोष और प्रभाव—चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से सोयाबीन का जितना महत्त्व है उससे बहुत अधिक महत्त्व आहार शास्त्र या भोजन विज्ञान की दृष्टि से है। मनुष्य शरीर को पोषण करने के लिए, उसको नीरोग रखने के लिए, उसको पुष्ट और कान्तिवान बनाने के लिए तथा उसमें जीवनी शक्ति (Vitality) और रोग-प्रतिरोषक शक्ति को कायम रखने के लिए जिन जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वे सब सोयाबीन में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

सोयाबीन में प्रोटीन ४० प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेड्स २४.६ प्रतिशत, नमक ४८ प्रतिशत, विटामिन ए० बी० और डी०, केलसियम, सोडियम, मैनगेनीज, फॉसफोरस और इनके क्षार, लवण तथा यौगिक काफी मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अन्दर धातुजलवण (Salts of metal) चार—पाँच प्रतिशत पाये जाते हैं।

सोयाबीन में फॉसफोरस काफी मात्रा में रहते हैं इस कारण यह मस्तिस्क तथा ज्ञानतन्तुओं की बीमारियों में जैसे मृगी, हिस्टीरिया, स्मरण शक्ति की कमजोरी, सूखा रोग और फुफ्फुससम्बन्धी बीमारियों में उत्तम पथ्य का काम करता है। सोयाबीन के आटे में लेसिथिन (Lecithin) नामक एक पदार्थ रहता है। यह पदार्थ तपेदिक और ज्ञानतन्तुओं की बीमारियों में बहुत लाभ पहुँचाता है।

सोयाबीन के अन्दर पाई जानेवाली प्रोटीन दूसरी सब तरकारियों और अनाजों की प्रोटीन से बढ़िया होती है। इसकी प्रोटीन गाय के दूध की प्रोटीन से मिलती-जुलती होती है। मांस, मछली इत्यादि अपवित्र वस्तुओं में जितनी प्रोटीन होती है उतनी प्रोटीन सोयाबीन के द्वारा आसानी से प्राप्त की जा सकती है। जितने अन्न और शाक होते हैं उनमें सोयाबीन की प्रोटीन शरीर के पोषण और हजम होने की दृष्टि से उत्तम होती है। इसमें करीब-करीब सब खास-खास एमीनो एसिड्स (Amino Acids) खास करके ग्लाईसीन ट्रिप्टो फेट (Glycine Trypto Phate) और लाईसीन (Lycine) काफी मात्रा में पाये जाते हैं।

जाँच के पश्चात् यह भी मालूम हुआ है कि सोयाबीन की प्रोटीन में न्युक्लियो प्रोटीन नहीं होती, न्युक्लियो प्रोटीन से यूरिक एसिड बनता है जो शरीर के सब जोड़ों में जमा होकर गठिया की बीमारी पैदा करता है। माँस की प्रोटीन में न्युक्लियो प्रोटीन होती है जिससे यूरिक एसिड बनता है और जो गठिया का मूल कारण होता है। माँस की जगह सोयाबीन खाने से प्रोटीन तो मिलती है मगर यूरिक एसिड पैदा नहीं होता और मनुष्य गठिया तथा गुर्दे की बीमारियों से सुरक्षित रहता है।

सोयाबीन की एक विशेषता यह है कि यह शरीर अम्लता (Acidity) को कम करती है और क्षार की मात्रा को बढ़ाती है। इसलिए शरीर में अम्लता बढ़ने से जिन-जिन रोगों की उत्पत्ति होती है उनसे यह शरीर की रक्षा करती है।

कामशक्ति के ऊपर भी सोयाबीन अनुकूल प्रभाव डालती है। भारतवासियों के दैनिक भोजन में उड़द ऐसी वस्तु है जो बहुत कामशक्तिवर्द्धक है, पंजाब में सुबह-शाम दोनों टाइम उड़द की दाल खाते हैं इसी से वहाँ के लोग इतने पुष्ट और तगड़े होते हैं। लेकिन सोयाबीन उड़द से डेवढ़ी कामशक्तिवर्द्धक है। शाकाहारियों के लिए तो बल बढ़ाने के लिए यह नियामत है।

नाइट्रोजन और तेल भी सोयाबीन में काफी तादाद में रहता है। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात यह है कि इसमें स्टार्च (मैदा) का अंश बहुत कम रहता है जो कि शरीर के लिए हानिकर होता है। इसमें नाइट्रोजन, तेल, विटामिन और प्रोटीन सब आवश्यक चीजें काफी तादाद में रहती हैं और स्टार्च के समान हानिकारक चीज का इसमें अभाव रहता है। यही कारण है कि आहार-विज्ञान की दृष्टि से इस वस्तु ने सारे जगत् का ध्यान अपनी ओर खींच रक्खा है।

मधुमेह रोग और सोयाबीन—मधुमेह रोग में सोयाबीन एक उत्तम पथ्य है। डाक्टर जोजेफजेण्टो—जो कि एक सेनेटोरियम के प्रधान थे—का कहना है कि सोयाबीन में स्टार्च और कार्बोहाइड्रेड्स इतने कम रहते हैं कि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह मधुमेह के रोगियों को पथ्य के रूप में निःशङ्क होकर दी जा सकती है, यही दो चीजें (स्टार्च और कार्बोहाइ-ड्रेड्स) मधुमेह के रोगियों को हानि पहुँचाती हैं। हमारे सेनेटोरियम के कई मरीजों को सोयाबीन का आटा कई प्रकार से दिया और उन्हें हमेशा लाभ हुआ। कई मरीजों का तो यहाँ तक कहना है कि वे इसी की वजह से जिन्दा हैं नहीं तो अब तक कभी के खतम हो गये होते।

माँस, मुर्गी, मछली, अण्डा तथा दूसरी दालदार चीजें शरीर में अम्लता पैदा करती हैं लेकिन सोयाबीन शरीर में क्षार (Alkalinity) पैदा करके उस अम्लता को नष्ट कर देती है। यह रक्त में क्षार तत्त्व को पैदा करती है, जिससे रक्त की रोगप्रतिहारक शक्ति बढ़ती है। माँस में रहनेवाली प्रोटीन शरीर में यूरिक एसिड पैदा करके गठिया की बीमारी का मार्ग खोल देती है। यही कारण है कि माँस खानेवालों को गठिया और गुर्दे की बीमारियाँ अधिक होती हैं। मगर यह एक आश्चर्य की बात है कि सोयाबीन का प्रोटीन यूरिक एसिड को नष्ट करके इन रोगों से मनुष्य की रक्षा करता है।

सोयाबीन से दूध, दही इत्यादि चीजों के सिवा अन्य अनेक प्रकार की खाद्य सामग्रियाँ बनती हैं। रूस में एक बार सोयाबीन की प्रदर्शनी हुई थी जिसमें सोयाबीन से बनाई हुई ३०० प्रकार की चीजें—जैसे—सोयाबीन का दूध, सोयाबीन का दही, चाय, काफी, रोटी, बिस्कुट, चाकलेट, पूरी, कचौड़ी, समोसा इत्यादि अनेक चीजें दिखलाई गई थीं जिनको लोगों ने बहुत पसन्द किया था।

सोयाबीन का दूध—यह एक बड़े आश्चर्य की और मनोरञ्जक बात है कि जिस प्रकार हमारे यहाँ गाय, भैंस इत्यादि पशुओं से दूध प्राप्त करके बाजार में बेचा जाता है उसी प्रकार चीन में घर २ में तथा बड़ी २ फैक्टरियों में सोयाबीन का दूध तैयार किया जाता है। जैसे यहाँ बड़ी-बड़ी डेरी फर्मों से दूध बोतलों में भरकर शहरों में बिकने के लिए आता है वैसे ही वहाँ सोयाबीन का दूध बोतलों में भरकर या खुला ही बिकने के लिए आता है। प्रातःकाल अन्धेरा रहते ही हजारों लोग इस दूध को लेकर बेचने को निकल जाते हैं। जायके के लिए जैसे यहाँ के दूध में शक्कर मिलाते हैं वैसे ही वहाँ इसके दूध में शक्कर मिलाई जाती है।

चीन, जापान, मंचूरिया, इत्यादि में सोयाबीन के दूध का लोग बहुत उपयोग करते हैं। इस दूध में भी गाय, भैंस इत्यादि के दूध में पाये जानेवाले प्रोटीन, चर्बी, शक्कर, साइट्रिकएसिड, एलब्यूमिन, गंधक, फासफोरस, केल-सियम, लोहा और विटामीन इत्यादि तत्त्व पाये जाते हैं।

सोयाबीन का दूध बनाने का तरीका इस प्रकार है—१४ छटाँक पानी को आग पर उबलने के लिए रख दिया जाता है फिर उसमें चम्मच से थोड़ा २ सोयाबीन का आटा डालते जाते हैं और उसे खूब हिलाते जाते हैं, जब दो छटाँक आटा उसमें मिल जाता है तब आटा डालना बन्द कर देते हैं और १० मिटिन तक उसे और उबा-लते हैं और नीचे उतारकर छान लेते हैं। बस यही सोयाबीन का दूध है।

सोयाबीन के इस दूध का दही भी जमाया जाता है। एक रत्ती मैगनेशियम क्लोराइड को दो तोला खूब गरम पानी में घोलकर रख लेते हैं। इसमें से थोड़ा सा मिक्श्चर सोयाबीन के दूध में डाल देने से वह जम जाता है। दही जम जाने पर जो पानी ऊपर आ जाता है उसे नितार कर निकाल देते हैं। फिर लकड़ी के चौकोर ट्रे जो करीब तीन इंच गहरे होते हैं उनमें कपड़ा बिछाकर इस दही को उलट देते हैं और कपड़े के किनारों को उलट कर दही के ऊपर डाल देते हैं। ऊपर से लकड़ी का एक तख्ता रख देते हैं। इस प्रकार एक ट्रे के ऊपर दूसरी ट्रे, दूसरी पर तीसरी, इस प्रकार कई ट्रे को एक के ऊपर एक जमाकर उन सबके ऊपर एक भारी पत्थर रख देते हैं और दबाकर दही का सब पानी निकाल देते हैं। फिर सब ट्रे को अलग २ करके दही की चौकोर चकलियाँ काट लेते हैं। ये चकलियाँ इतनी सख्त हो जाती हैं कि हाथ से पकड़ने पर भी नहीं टूटती।

इस दही को जापान और चीन में टोफू कहते हैं। इस टोफू में प्रोटीन, चर्बी और लवण बहुत होता है।

सोयाबीन का तेल—सोयाबीन के बीजों का तेल भी निकाला जाता है इस तेल में भी विटामिन 'ए' तथा दूसरे शक्तिवर्द्धक पदार्थ पाये जाते हैं। इस तेल से लार्ड मारगैरीन वनस्पति घी बनता है जिसे बिलायत में गरीब लोग घी की जगह खाते हैं।

मतलब यह कि सोयाबीन एक पौष्टिक अन्न है। इसमें शरीर-रक्षा के उपयोगी सभी तत्त्व पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोमवल्खम

नाम—दक्षिण—सोमवल्खम। तामिल—कल्लाल। लेटिन—Ficas Dalhousiae (फिकस डेलहोसिया)।

वर्णन—यह पीपल या अञ्जीर के वर्ग का एक वृक्ष होता है। जो नीलगिरि पहाड़ पर पैदा होता है

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते यकृत की शिकायतों और चर्मरोगों के अन्दर उपयोग में लिये जाते हैं। इसके फल हृदय रोगों के अन्दर उपयोगी होते हैं।

सोमवल्ली

नाम—संस्कृत—सोमवल्ली, सोमलता, द्विजप्रिया, यज्ञश्रेष्ठा, सोमा इत्यादि।

वर्णन—सोमवल्ली आयुर्वेद विज्ञान मत से एक दिव्य वनस्पति होती है मगर यह सोमवल्ली वास्तव में क्या वस्तु है इसका निश्चय अभी तक नहीं हो सका है। कई लोगों के मतानुसार असानिया (एफीड्रा वल्गेरिस-जिसका वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में दिया जा चुका है) ही सोमवल्ली होती है तथा कुछ लोग पोरबन्दर की तरफ होनेवाली थोरवेल (Sarcostemma Bravistigma—जिसका वर्णन इस ग्रन्थ के चौथे भाग में जीवन्ती के नाम से दिया जा चुका है) की सोमलता कहते हैं। मगर प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस वनस्पति की जो पहचान और चिह्न बतलाये गये हैं वे इनमें से किसी के अन्दर भी नहीं पाये जाते।

सोमवल्ली का वर्णन करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं कि सब ओषधियों में राजास्वरूप सोम नामक वनस्पति के पन्द्रह पत्ते होते हैं। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की बढ़ती कला के अनुसार एक २ पत्ता रोज बढ़ता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की उतरती कला के अनुसार एक-एक रोज गिरता है।

महर्षि सुश्रुत लिखते हैं:—

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दश पंच च। तानि शुक्ले च कृष्णे च जायंते निपतंति च॥
एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा। शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु भवेत् पंचदशच्छदः॥
शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः। कृष्णपक्षे क्षये चापि वल्ली भवति केवला॥

अर्थात्—सब प्रकार की सोमवल्लियों पर पन्द्रह-पन्द्रह पत्ते होते हैं जो कृष्णपक्ष में गिरते हैं और शुक्लपक्ष में प्रतिदिन नये फूटते हैं, अर्थात् शुक्लपक्ष में इस लता का प्रतिदिन एक पत्ता नया फूटता है और पूर्णिमा के दिन इसके पूरे पन्द्रह पत्ते होते हैं इसी प्रकार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन एक पत्ता गिरता है और अमावस्या के दिन खाली लता बिना पत्तों की हो जाती है।

सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय २९ में सोम-रसायन का विधान, उसकी फलश्रुति, उसके २४ भेद, उसकी सेवन-विधि, उसकी जातियों की पहचान इत्यादि अनेक बातों का विस्तृत विवेचन है।

महर्षि सुश्रुत लिखते हैं कि सोमवल्ली २४ प्रकार की होती है १ अंशुमान्, २ मुंजवान्, ३ चन्द्रमा, ४ रजतप्रभ, ५ दूर्वासोम, ६ कनीयान्, ७ श्वेताक्ष, ८ कनकप्रभ, ९ प्रतानवान्, १० तालवृन्त, ११ करवीर, १२ अंशवान्, १३ स्वयंप्रभ, १४ महासोम, १५ गरुडाहृत, १६ गायत्र, १७ त्रैष्टुभ, १८ पांक्त्य १९ जागत, २० शाक्वर, २१ अग्निसोम, २२ रैवत, २३ यथोक्त और २४ उडुपति ये चौबीस भेद होते हैं। ये ही २४ भेद वेदों में भी बतलाये गये हैं। त्रिपदा गायत्री में भी सोम का प्रतिपादन किया है। इन चौबीस जातियों में अंशुमान नामक सोम घी के समान गंधवाला, कन्द युक्त और चाँदी के समान प्रभावाला होता है। मुंजवान नामक सोम केले के समान कन्द वाला और लहसन के समान पत्तों वाला होता है। चन्द्रमा नामक सोम सुवर्ण के समान प्रभा वाला होता है और हमेशा जल में रहता है, गरुडाहृत और श्वेताक्ष नामक दो जाति के सोम सफेद प्रभावाले होते हैं इनका स्वरूप सांप की केंचुली के समान होती है और वृक्षों के अग्रभाग पर लटकता है। ये पांचो ही प्रकार के सोम चन्द्रमा की कला के हिसाब से पूर्णिमा के दिन पन्द्रह पत्तों से युक्त हो जाते हैं।

सोमवल्ली आबू, सह्यादि, महेन्द्राचल, मलयाचल, पारियात्र, विन्ध्याचल, श्रीशैल, देवगिरि और देवसह नामक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर्वतों में और देवसूदक नामक सरोवर में मिलती है। वितस्ता नदी के उत्तर में पाँच बड़े पर्वत हैं उन पर्वतों के नीचे मध्यभाग में सिन्धु नामक बड़ा नद है, उसमें चन्द्रमा नामक उत्तम सोम शैवाल की तरह तिरता रहता है। मुंजवान् और अंशुमान नामक दो जाति के सोम भी सिन्धु नद के प्रदेशों में मिलते हैं। काश्मीर देश में सूदकमानस नामक एक दिव्य सरोवर है उस सरोवर में गायत्र, त्रैष्टुभ, पांक्त्य, जागत और शाक्कर नामक सोम मिलते हैं। चन्द्र के समान प्रभा वाले दूसरे सोम भी इस प्रदेश में मिलते हैं। अधर्मी, कृतघ्न, द्वेषी इत्यादि मनुष्यों को सोम प्राप्त नहीं होते। (सुश्रुत संहिता)

सुश्रुत के उपरोक्त सारे कथन पर अन्दाज लगाकर, पोरबन्दर के सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी लिखते हैं कि महर्षि सुश्रुत का सोमबल्ली प्राप्ति-स्थान 'सिन्धु नदी का प्रदेश, पंजाब, सिंध और कच्छ ही माना जा सकता है। कच्छ में आक या मदार के वर्ग की दो वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। इन वनस्पतियों के रासायनिक गुण-दोषों की बराबर जाँच होकर अगर उन पर प्रयोग किये जावें तो वे ऊपर कहे हुए २४ जाति के सोमों में एक दो जाति की सोम मानने में आ सकती हैं। इन दो वनस्पतियों में एक वनस्पति सोमवेल (Sarcostemma Bravistigma) है। इसकी लताएँ खुरासानी थूहर के समान होती हैं, इसमें जगह-जगह जोड़ या संधियां होती हैं। इसके अन्दर दूधिया रस भरा हुआ रहता है इसके ऊपर सफेद रंग के सुगन्धित छोटे-छोटे फल गुच्छों में लगते हैं। इसकी फलियां लम्बी और पतली लगती हैं।

यह सोमवेल मादक, रसायन और शोथ, दाह, ज्वर तथा कफ को नष्ट करनेवाली होती है।

दूसरी वनस्पति दुधाली खीप (Periploca Aphylla) भी सोमवल्ली से मिलती-जुलती होती है। इसके पौधे तीन से पाँच फीट तक ऊँचे और बहुशाखी होते हैं। इसकी डालियों में दूध भरा हुआ होता है। इसमें कभी-कभी पत्ते होते हैं और कभी बिलकुल नहीं होते हैं। जो पत्ते होते हैं मोटे, ढोल के आकार के नोकदार और बिना नसों के होते हैं। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि इस झाड़ के पत्ते दो-चार दिन में एक साथ पीले पड़कर गिर जाते हैं। इस वनस्पति के विषय में भी सोम होने का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित सोमवल्ली के सम्बन्ध में अब तक जितने अनुमान लगाये गये हैं उनमें असानिया (Ephedra Vulgaris), सोमवेल (Sarcostemma Bravistigma) और दुधालीखीप (Periploea Aphylla) नामक वनस्पतियाँ उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त 'बावची' 'ब्राह्मी' और 'सुदर्शन' नाम की वनस्पतियों के लिए भी सोमवल्ली शब्द का प्रयोग किया गया है।

फिर भी सोमवल्ली का जो प्रधान लक्षण एक-एक पत्ता रोज पैदा होना और एक-एक पत्ता रोज गिरना यह उपरोक्त वनस्पतियों में से भी किसी में भी नहीं पाया जाता सोमवल्ली का दूसरा प्रधान लक्षण मादकता है उपरोक्त वनस्पतियों में भी एक-दो वनस्पतियों में मादक धर्म पाया जाता है, मगर वह मादकता सोमवल्ली की मादकता के समान ही विशिष्ट गुण सम्पन्न है यह कहना बहुत कठिन है, क्यों कि सोमवल्ली से प्राप्त होने वाली मादकता मनुष्य के ज्ञान को बढ़ाने वाली, दीर्घायु को देने वाली, बुढ़ापे को जीतने वाली और परम रसायन होती है। ऐसी मादकता उक्त वनस्पतियों में कहाँ से प्राप्त हो सकती है। अतः दूसरे लक्षण में भी ये वनस्पतियाँ सोमवल्ली हो सकती हैं यह समझना भ्रमपूर्ण है। सोमवल्ली का तीसरा लक्षण उसकी दिव्यता और प्रभावशालिता है। यह दिव्यता और प्रभावशालिता भी उपरोक्त वनस्पतियों में कहाँ है। जिस दिव्यता के लिए महर्षि सुश्रत लिखते है कि 'विचक्षण पुरुष अगर इस ओषधिराज सोम का सेवन करे तो उसकी दश हजार वर्ष की आयु को अग्नि, जल, विष, शस्त्र कोई भी तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकता। ऐसी सामर्थ्य आधुनिक मनुष्य की खोजी हुई उपरोक्त वनस्पतियों में कहाँ है।

मतलब यह कि जिस सोमवल्ली का विवेचन प्राचीन ग्रन्थों में किया गया है वह भी उन अनेक दिव्य ओषधियों की तरह आज मनुष्य समाज को दुर्लभ हैं जो धर्मयुक्त समय और धर्मयुक्त समाज में मनुष्य को प्राप्त होती थीं।

फिर भी इसके सम्बन्ध में जो साहित्य प्राप्त है उससे इतना तो कहा जा सकता है कि यह एक प्रकार की, लता होती है जो जल और थल दोनों स्थानों पर पैदा होती है। इसके पत्ते शुक्लपक्ष की परम्परा से घटते-बढ़ते हैं। इसमें एक उत्तम जाति की मादकता रहती है। पूर्वकाल में इससे 'सोमरस' नामक सुप्रसिद्ध पेय तैयार किया जाता था जो बड़े२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्सवों जलसों और धार्मिक पर्वों में सामूहिक रूप से पान किया जाता था। जिस प्रकार कि आज कल कुछ स्थानों पर भांग का और कुछ स्थानों पर शराब का प्रयोग किया जाता है। इसका नशा सात्त्विक, दैवी गुणों से युक्त और मनुष्य को ऊँचा उठाने वाला होता था।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—महर्षि सुश्रुत के मतानुसार इसके रस का पान करने से शारीरिक स्वास्थ्य, मन की स्फूर्त्ति, बुद्धि, बल, वाणी और आनन्द में सैकड़ों गुनी वृद्धि होती है।

ऋग्वेद में लिखा है कि इसके सेवन से पाण्डित्यशक्ति प्राप्त होती है, चित्त स्थिर होता है, लोक और परलोक सम्बन्धी समस्त ज्ञान को प्राप्त करने की सामर्थ्य पैदा होती है। इसके सेवन से सब प्रकार की व्याधियों पर विजय प्राप्त होता है। मृत्यु के मुँह में पहुँचते हुए मनुष्य के लिए भी यह उत्तम औषधि है क्योंकि यह सब प्रकार के असाध्य और कठिन रोगों को दूर करती है। इतना ही नहीं बल्कि विधिपूर्वक सेवन करने से यह अमरत्व भी प्रदान करती है।

सोम की स्तुति करते हुए ऋग्वेद में लिखा है 'हे अमृत सोम हम तेरे को पान करके अमर हुए। अगम्य विषयों को जानने के लिए दिव्य ज्ञान प्राप्त किया। अब मृत्यु के समान शत्रु भी हमारा क्या बिगाड़ सकता है।'

यजुर्वेद में इसकी प्रार्थना करते हुए लिखा है कि 'तुझे गन्धर्वों ने खो दी, तुझे इन्द्र ने खो दी, और चन्द्रमा भी तेरा सेवन करके क्षय रोग से मुक्त हुआ।'

रससार नानक ग्रन्थ में लिखा है कि 'एक ऐसी लता होती है जो कि कृष्णपक्ष में उसका एक-एक पत्ता प्रतिदिन गिरता है और शुक्लपक्ष में एक-एक पत्ता प्रतिदिन फूटता है। इस लता का कन्द पूर्णिमा के प्रभात में लाकर उसके रस से सोने के साथ पारे की गोली बांधकर उस गोली का उपयोग करने से शरीर अजर और अमर होता है तथा लोहे पर उसका प्रयोग करने से वह सोना हो जाता है।

इस प्रकार इस वनस्पति की प्रशंसा प्राचीन ग्रन्थों में गाई है मगर वास्तव में यह वनस्पति क्या है यह बात आज तो अन्धकार में है।

सिंगड़ियो

नाम—कच्छी—सिंगड़ियो, थोरियो, छिरियार खीप, रतीखीप। गुजराती—दुधालीखीप, थोरियुं, होम। लेटिन—Periploca Aphylla (पेरीप्लोका अफेला)।

वर्णन—सिंगड़ियो या दुधाली खीप के वृक्ष ३ से लेकर पांच फीट तक ऊँचे होते हैं, इनमें बहुत सी शाखाएँ निकली हुई होती हैं। ये शाखाएँ हरे रंग की चमकदार और दूध से भरी हुई होती हैं। इसके पत्ते मोटे, दलदार, ढोकले के समान और बिना नसों के होते हैं। इसके फूल अत्यन्त सुन्दर, सुगन्धित, आधे इंच व्यास के और बैंगनी रंग के होते हैं। इसकी फलियां आमने-सामने लगती हैं, ये पतली और तीखी नोकवाली होती हैं। इसके बीजों पर मुलायम बालों की पींछी होती हैं। ऊपर सोमवल्ली का विवेचन करते हुए हम लिख आये हैं कि कई लोग इसी वनस्पति को सोमवल्ली मानते है।

पागल कुत्ते का विष और सिंगड़ियो—पागल कुत्ते के विष पर यह वनस्पति उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका यह उपयोग कच्छ के किसी मुसलमान को एक फकीर ने बतलाया था और जिसका उल्लेख सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी ने अपनी 'कच्छनी वनस्पतियों' नामक ग्रन्थ में किया है, इसके उपयोग की विधि इस प्रकार बतलाई गई है—

(१) जिसको पागल कुत्ते ने काटा हो मगर उसके विष के लक्षण (हड़काव) पैदा न हुए हों, उसको इस झाड़ के पत्ते और डंठल पानी के साथ खूब महीन पीस कर उनको थोड़े पानी में छान कर हर तीसरे दिन एक वाइन ग्लॉस (करीब ५ तोले) पिलाना चाहिये।

(२) अगर उसको विषके लक्षण या हड़काव पैदा हो गया हो तो उसको ऊपर लिखी हुई दवा का एक वाइन ग्लॉस भर कर तुरन्त पिलाना चाहिए और यदि चार घण्टे में कुछ लाभ दृष्टिगोचर हो तो उसके अनुसार कुछ कम मात्रा करके फिर पिलाना चाहिए। अगर कुछ लाभ दिखलाई न दे तो एक २ घण्टे में एक-एक वाइन ग्लास भरकर तब तक पिलाना जब तक कि फायदा न हो। फायदा शुरू होने पर दवा की मात्रा क्रमशः कम करते जाना जाहिए।

इस औषधि को उपरोक्त मुसलमान ने पागल कुत्ते के कुछ रोगियों पर वि० संवत् १९४१ में उपयोग में लिया और प्रायः सब रोगियों को इससे लाभ हुआ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोडा

नाम—हिन्दी—सोडा। अङ्गरेजी—Sodii Bi Carbonas (सोडि बाई कार्बोनास)।

वर्णन—सोडा एक क्षार होता है, यह सफेद रङ्ग का होता है। खाने के काम का तथा कपड़ा धोने के काम का, इस तरह यह दो प्रकार का होता है। यह एक मशहूर वस्तु है जिसे सब कोई जानते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—सोडा पाचक, उदरशूल को दूर करनेवाला तथा कब्जियत, अग्निमान्द्य, हिचकी, अरुचि इत्यादि रोगों में बहुत लाभ पहुँचानेवाला होता है।

इसकी क्रिया पेट के अन्दर पोटेसियम साल्ट की तरह होती है मगर यह पेट में बहुत धीरे धीरे घुलता है। यह पेट की जलन को कम करता है। इसका पानी के साथ लेप बनाकर अग्नि से जले हुए स्थान पर लेप करने से तुरन्त शान्ति होती है। इसके पानी से कुल्ले करने से दाँत का दर्द कम होता है और किसी भी एसिड युक्त दवा को पीने से दाँतों में जो खराबी पैदा हो जाती है वह दूर हो जाती है। दन्तशूल की वजह से होनेवाला मस्तकशूल भी इसके कुल्ले करने से मिट जाता है।

बिना कब्जियत के होनेवाला सिर दर्द सोडा बाई कार्ब को भोजन के पहले लेने से मिट जाता है। पेट की खराबी से होनेवाली खाँसी में सोडा बहुत उपयोगी होता है। इसके लिए एक ड्राम सोडा एक बड़े ग्लॉस पानी में डालकर धीरे धीरे पीना चाहिए। जलनयुक्त अग्निमांद्य में—जिसमें पेट में कलेजे के यहाँ पर जलन रहती है, खट्टी डकारें आती हैं, पेट फूला हुआ रहता है और कब्जियत रहती है—सोडा एक बहुमूल्य औषधि है। इस कार्य के लिए भोजन के तीन घण्टे के बाद इसको देना चाहिए। अगर इसको भोजन के पहले कुचला और स्प्रिट एमोनिया के साथ दिया जाय तो यह भूख को बढ़ाता है, कमजोरी से होनेवाले अग्निमांद्य में इसको बीस ग्रेन की मात्रा में एक औंस पानी के साथ मिलाकर पीने से लाभ होता है। पेट के अन्दर होनेवाले छालों में जिसमें पेट में बहुत दर्द रहता है एक चाय का चम्मच भर सोडा चने के नितरे हुए पानी के एक बड़े ग्लॉस के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

मधुमेह के अन्दर भी यह एक मूल्यवान् औषधि है। मधुमेह जनित बेहोशी में ३ प्रतिशत सोडे से तैयार किया हुआ निर्यास पिलाने से बेहोशी दूर होती है। इसके साथ ही पाँच औंस पानी में एक ड्राम सोडा मिलाकर एक-एक घण्टे में तब तक पिलाना चाहिए जब तक पेशाब में अल्के लाइन रिएक्शन पैदा न हो जाय। बहुत सांघातिक केसों में इसका तीन पिण्ट पानी इण्ट्राबीनस इंजेक्शन के द्वारा दिया जाता है।

सूक्ष्म वायुनलियों में जमे हुए कफ को यह ढीला करता है। हिचकी के अन्दर भी यह एक बहुमूल्य दवा है। एक बार गुजरात के डाक्टर नानावटी को हिचकी चलना शुरू हुई। जो कई महीनों तक चलती रही। अनेकों प्रकार की औषधियों और इंजेक्शनों का प्रयोग किया गया, मगर वह किसी से बन्द न हुई। यहाँ तक कि सोडा भी छोटी-छोटी मात्रा में कई बार दिया गया मगर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में सुप्रसिद्ध डाक्टर जीवराज मेहता ने उनको एक ड्राम की मात्रा में सोडा एक साथ दिया जिससे उसमें बहुत लाभ हुआ और चार-पाँच खुराक देने पर तो वह एकदम बन्द हो गई।

मतलब यह कि सोडा उदररोगों के लिए एक बहुमूल्य बस्तु है।

सोरा

नाम—संस्कृत—सूर्यक्षार, अर्कक्षार, तीक्ष्णरस, सुवर्चिका इत्यादि। हिन्दी—सोरा, कलमी सोरा। मराठी-सोरा। गुजराती—सुरोखार। फारसी—शोरा। अरबी—अबकर। लेटिन—Potassium Nitras (पोटेसियम नाइट्रस)

वर्णन—सोरा एक प्रकार का क्षार होता है जो सफेद रंग का रवेदार होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सूर्यक्षार, तीक्ष्ण, अत्यन्त उष्ण, रेचक, कटु, अग्निदीपक, सूक्ष्म, लघु, दाहजनक, शोषक, वातनाशक, पित्तकारक तथा प्लीहा, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग, वातरक्त, कुम्भकामला, खांसी, नाक का पकना, पिटिका, शिरःपाक, शूल और आध्मान को दूर करता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोरे की प्रधान क्रिया मूत्रपिण्ड पर होती है। यह गुरदे के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है, इसलिए यह गुरदे की विनिमय क्रिया को सुधारता है और रुके हुए पेशाब को जारी करता है तथा पेशाब की तादाद को बढ़ाता है। इसके अन्दर पसीना लाने का गुण भी है अतः इसे ज्वर में देने से यह पसीना लाकर ज्वर के तापमान को कम कर देता है। मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग में सोरे का प्रयोग लाभदायक होता है। इसको दूध के साथ पिलाने से और और पानी के साथ मिलाकर पेड़ू पर लेप करने से रुका हुआ पेशाब खुलकर साफ होता जाता है। एक माशा शोरा, एक माशा राई और दो माशे मिश्री को पीसकर, दो मात्रा करके, दो दिन तक प्रातःकाल लेने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है।

सोरे को सरसों के तेल में मिलाकर लेप करने से खुजली मिटती है। सोरा और सफेद कत्थे को मिलाकर भुरभुराने से मुँह के छाले मिटते हैं।

शुद्ध कलमी सोरे में हलदी मिलाकर आँखों में आँजने से जाला, नाखून आदि नेत्ररोग मिटते हैं और नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। इसको सिरके में पीसकर कनपटी पर लेप करने से नकसीर बन्द हो जाता है। दो से दस माशे तक शोरा भोजन के पहले खिलाने से मरा हुआ बालक गर्भाशय से निकल जाता है।

सोंठ

नाम— संस्कृत—शुण्ठी, महौषधि, विश्वा, विश्वभेषज, शृंगवेर, इन्द्रभेषज इत्यादि। हिन्दी—सोंठ, सूंठ। बङ्गला—शुंठ। मराठी—सोंठ। गुजराती—सोंठ, सुंठ। फारसी—जजबील खुश्क। इंग्लिश—Dry Ginger (ड्राय जिंजर)।

वर्णन—सोंठ अदरक की सुखाई हुई गठानों को कहते हैं। ये गठानें सफेद रंग की होती हैं। सोंठ दो प्रकार की होती है (१) सटवा सोंठ और (२) पेटी की सोंठ। इसमें सटवा सोंठ उत्तम होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सोंठ रुचिकारक, आमवात नाशक, पाचक, चरपरी, हलकी, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाक में मधुर तथा कफ, वात और कब्जियत को दूर करनेवाली होती है। यह वीर्यवर्द्धक, सारक तथा वमन, श्वास, शूल, खाँसी, हृदय रोग, श्लीपद, बवासीर, आफरा, उदर रोग और वात रोगों का नाश करती है। यह अग्नितत्त्व प्रधान होने से जलांश का शोषण करती है। इसमें ग्राही धर्म भी है और कब्जियत को भेदन करने का धर्म भी रहता है।

सोंठ कफवातनाशक, पचने में मधुर, चरपरी, वीर्यवर्द्धक, गरम, रोचक, हृदय को हितकारी, स्निग्ध, हलकी और दीपन होती है। यह पाण्डुरोग, संग्रहणी और पित्त का नाश करती है।

सोंठ आयुर्वेद की एक सुप्रसिद्ध और घरेलू औषधि है आयुर्वेद के मत से इसमें हजारों गुण हैं। यह सारे शरीर के संगठन को सुधारती है। मनुष्य की जीवनीशक्ति और उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाती है। हृदय, मस्तिष्क, रक्त, उदर, वातसंस्थान, मूत्रपिण्ड इत्यादि शरीर के सब अवयवों पर अनुकूल प्रभाव डालती है और उनमें पैदा हुई विकृति और अव्यवस्था को दूर करती है। आयुर्वेद में बननेवाले हजारों योगों में इसका सम्मेलन होता है। यह आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग 'त्रिकुटा' (सोंठ, मिर्च और पीपर) का एक प्रधान अङ्ग है।

कोमान के मतानुसार सोंठ देशी चिकित्साशास्त्र के अनेक नुसखों में सम्मिलित की जाती है। वैद्य लोग इस औषधि को उत्तेजक, पाचक और शान्तिदायक मानते हैं। मलाबार के वयानूर नामक स्थान में अदरक का ताजा रस जलोदर में लाभ पहुँचानेवाला और मूत्र-निस्सारक माना जाता है। जलोदर के ऐसे करीब तीन केस देखे गये हैं जिनमें कि इसको औषधि के रूप में देने से फायदा हुआ है। इसके देने से पेट की सूजन में भी लाभ हुआ है। इस वनस्पति का ताजा रस तेज मूत्रनिस्सारक औषधि मानी गई है। इसके देने से बीमार लोगों के मूत्र की मात्रा दिन पर दिन बढ़ती गई है। लेकिन यह औषधि पुराने हृदय रोग और ब्राइट्स डिसीज में उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। बल्कि इसके उपयोग से रोगी की हालत प्रतिदिन खराब होती गई।*

* अदरक का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

डा० देसाई के मत से सोंठ सुगन्धित, उत्तेजक और उत्तम दीपन होती है। इसके सेवन से पाचन क्रिया शुद्ध हो जाती है और पेट में वायु का संचय नहीं होने पाता। इस गुण की वजह से सोठ आँतों के रोगों में बहुत उपयोग में ली जाती है।

सोंठ के उष्ण और वातनाशक धर्म की वजह से सब प्रकार की वातजनित वेदना में इसका उपयोग किया जाता है। जीर्ण सन्धिवात में विशेषकर वृद्ध मनुष्यों को आराम देनेवाली दो औषधियाँ होती हैं एक सोंठ और दूसरी चोबेहयात। रात्रि में सोते समय एक तोला सोंठ की फांट बनाकर देने से आमवात से ग्रसित वृद्ध स्त्री, पुरुषों को सुखदायक नींद आ जाती है। पेट में आफरा होने की वजह से अगर हृदय में शूल चलता हो तो उसमें सोंठ को देने से वायु सरकर हृदयशूल मिट जाता है।

सोठ में कफनाशक धर्म होने की वजह से यह खाँसी और दूसरे कफ रोगों में बहुत उपयोग में ली जाती है।

उपयोग—विषम ज्वर—बकरी के दूध के साथ १॥ माशा सोंठ के चूर्ण की फक्की देने से गर्भवती स्त्री का विषम ज्वर छूट जाता है।

आधाशीशी—सोंठ को पानी के साथ पीसकर लेप करने से आधाशीशी की पीड़ा मिटती है।

मस्तकशूल—सोंठ को बकरी के दूध में पीसकर नस्य देने से कई प्रकार के दोषों से पैदा हुआ मस्तकशूल मिटता है।

नेत्ररोग—सोंठ, नीम के पत्ते या निम्बोली को पीसकर उसमें थोड़ा सेंधानमक डालकर टिकिया बनाकर कुछ गर्म करके नेत्रों पर बाँधने से नेत्रों की पीड़ा, खुजली और सूजन मिटती है।

हृदयरोग—सोंठ का कुछ कुनकुना क्वाथ पीने से हृदयरोग में लाभ होता है।

आमवात—सोंठ के एक तोला चूर्ण को कांजी के साथ नित्य पीने से आमवात में लाभ होता है। सोंठ और गिलोय का क्वाथ बनाकर पीने से बहुत दिनों का पुराना आमवात मिटता है।

मन्दाग्नि—सोंठ के चूर्ण को गुड़ में मिलाकर नित्य खाने से अग्नि प्रदीप्त है।

वमन—सोंठ और बेल का क्वाथ पिलाने से वमन और विषूचिका में लाभ होता है।

हिचकी—सोंठ और हरड़ को पानी में पीसकर उसकी लुगदी को खिलाकर गरम जल पिलाने से श्वास और हिचकी मिटती है। सोंठ, आंवले और पीपल का चूर्ण शहद के साथ चटाने से हिचकी मिटती है। सोंठ के चूर्ण की फक्की देकर ऊपर से बकरी का गरम दूध पिलाने से हिचकी मिटती है।

पक्षाघात—सोंठ और सेंधे नमक को महीन पीसकर सुंघाने से पक्षाघात में लाभ होता है।

नेत्रपीड़ा—सोंठ को पानी में घिसकर उसकी दो-तीन बून्द आँखों में टपकाने से नेत्रपीड़ा मिटती है।

बच्छनाग का विष—सोंठ का चूर्ण खिलाने से बच्छनाग के विष की शान्ति होती है।

उदररोग—चार माशे सोंठ का क्वाथ करके पिलाने से मन्दाग्नि, उदर रोग और जल के दोष मिटते हैं। सोंठ और जवाखार की गर्म जल के साथ फक्की लेने से कई देशों के जल को पीने से पैदा हुए विकार मिटते हैं।

आमाजीर्ण—सोंठ और धनिये का क्वाथ पिलाने से आमाजीर्ण मिटता है।

वादी की पीड़ा—सोंठ और एरण्ड की जड़ को औटाकर पिलाने से बादी और सर्दी की पीड़ा मिटती है तथा सोंठ, कायफल और असगन्ध को पीसकर लेप करने से बादी की पीड़ा मिटती है।

संग्रहणी—कच्चे बेल का गूदा और सोंठ को गुड़ में मिलाकर मट्ठे के साथ पीने से संग्रहणी में लाभ होता है।

पाण्डुरोग—सोंठ के कल्क से सिद्ध किया हुआ घी पिलाने से पाण्डुरोग, ज्वर, खाँसी और संग्रहणी में लाभ होता है।

कमर की शूल—सोंठ के क्वाथ में अरण्डी का तेल मिलाकर पिलाने से कमर, बस्ति और कुक्षि का शूल मिटता है।

आमवात—सोंठ और गोखरू का क्वाथ प्रातः काल नित्य पीने से आमवात और कटिशूल मिटता है।

मूत्रकृच्छ्र—सोंठ और गोखरू के क्वाथ में जवाखार मिलाकर प्रतिदिन प्रातः काल पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

श्लीपद—गोमूत्र के साथ सोंठ के चूर्ण की प्रतिदिन फक्की लेने से श्लीपद में लाभ होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोया

नाम—संस्कृत—शतपुष्पा, अहिच्छत्रा, शताह्वी, सुपुष्पिका, कारवी इत्यादि। हिन्दी—सोया, सुवा, सेंधी सुवा। गुजराती—सुवा। मराठी—बालंतशेप। बंगला—शुल्फा, शोंवा, सोवा। बम्बई—बालन्तशेप, सुवा। फारसी—शोल। तैलगू—सोम्या, शतकुपि। तामिल—शतकुप्पि। उर्दू—सोया। इंग्लिश—Dill (डिल)। लेटिन—Peucedanum Graveolens (प्यूसीडेनम ग्रेवीओलेन्स)।

वर्णन—सोया का क्षुप धनिये के क्षुप से मिलता-जुलता है। इसके पत्ते बहुत महीन होते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं। इसके बीज धनिये के बीजों से मिलते-जुलते होते हैं। इस वनस्पति की खेती सारे भारतवर्ष में होती है। इसके पौधे की तरकारी बनाई जाती है।

इसके १०० तोले बीजों में तीन-चार तोले सुगन्धित तेल निकलता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सोया के बीज चरपरे, गरम, कड़वे, अग्निवर्द्धक, ज्वर-नाशक, शान्तिदायक, कृमिनाशक, पाचक और वात, कफ, व्रण, उदरशूल, नेत्ररोग और योनिशूल को दूर करनेवाले तथा पित्तवर्द्धक होते हैं।

भावप्रकाश के मतानुसार सोया के बीज हलके, तीक्ष्ण, पित्तकारक, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले, चरपरे, गरम तथा ज्वर, वात, कफ, व्रण, शूल और नेत्र रोगों को दूर करनेवाले होते हैं।

राजनिघण्टु के मतानुसार सोया के बीज चरपरे, कड़वे तीक्ष्ण, गरम, अग्निदीपक, हलके, पित्तकारक, वात-नाशक और विशेष करके योनिशूल को नष्ट करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज गरम, कड़वे, शान्तिदायक, अतिसार को दूर करने वाले, अग्नि-वर्द्धक, मूत्रल, मृदुविरेचक, ऋतुस्रावनियामक, घाव को अच्छा करनेवाले, आंतों के दर्द को दूर करनेवाले, सर्दी से होने वाली वेदना को दूर करनेवाले तथा हिचकी और कर्णशूल में लाभदायक होते हैं। ये यकृत, तिल्ली, मसाना, छाती तथा उपदंश, पुरातन प्रमेह और बवासीर में लाभदायक होते हैं।

डा० देशाई के मत से सोया दीपन, वायुनाशक और गर्भाशय को उत्तेजना देनेवाली होती है। प्रसूतिकाल में इसके बीजों का उपयोग करना शास्त्रसम्मत है। बच्चों के उदर शूल और पेट के फूलने में इसका अर्क चूने के नितरे हुए पानी में मिलाकर दिया जाता है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर गठानों को पकाने के लिए उन पर लेप करते हैं।

इसका फल चटनी और ओषधि के बतौर काम में लिया जाता है। इसका निर्यास स्त्रियों को प्रसूति के पश्चात् अग्निबर्द्धक वस्तु के बतौर दिया जाता है। इसके पत्तों पर तेल चुपड़ कर उत्तेजक पुलटिस की तरह अथवा फोड़ों को पकाने के लिए उस पर बांधते हैं।

इसके बीज शान्तिदायक और अग्निवर्द्धक होते हैं, बच्चों की बीमारियों में, जैसे पाचन शक्ति की कमजोरी, उदरशूल, कब्जियत इत्यादि रोगों में यह एक बेजोड़ और आश्चर्यजनक वस्तु है। इन कामों के लिए यह अर्क (Dill water) के रूप में दी जाती है। इंग्लैंड में प्रत्येक माता और नर्स इन रोगों में इसकी उपयोगिता से परिचित है।

केस और महस्कर के मतानुसार इसका अर्क ६० बूंद की मात्रा में चपटे कृमियों (Hook worm) को नष्ट कर देता है।

उपयोग—फोड़े—इसके पत्तों को तेल से चुपड़ कर गर्म करके फोड़े-फुंसियों पर बाँधने से वे जल्दी पक जाते हैं।

उदरशूल—इसके बीजों का क्वाथ बनाकर पिलाने से उदरशूल मिटता है।

मन्दाग्नि—सोंठ के साथ सोया के बीजों के चूर्ण की फक्की देने से अजीर्ण और मन्दाग्नि मिटती है।

दूध की कमी—सोया के बीजों को मिश्री के साथ मिलाकर खिलाने से अथवा सोया के बीजों का पाक बनाकर खिलाने से स्त्रियों के स्तनों में दूध बढ़ता है। बालक होने के पश्चात् इसके बीजों को फांट बनाकर पिलाने से प्रसूता के हृदय को बल मिटता है। प्रसूता स्त्रियों के लिए यह एक बहुमूल्य वस्तु है।

मूत्र की रुकावट—सोया के बीजों के चूर्ण में मिश्री लिलाकर उसको दूध की लस्सी के साथ देने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

गठान—इसके बीजों को अरण्डी के साथ पीस कर गर्म करके लेप करने से गठान बिखर जाती है।

पुराने घाव—सोया के बीजों की राख भुरभुराने से पुराने घाव मिट जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोसन

नाम—हिमालय—सोसन, शोति, चिलुचि, चालनुन्दार। लेटिन—Iris Nepalensis (आयरिस नेपालेन्सिस।)।

वर्णन—यह एकवर्षजीवी वनस्पति होती है। इसकी डालियाँ ६ से १२ इञ्च तक ऊँची होती हैं, इसके पत्ते फूल आने के समय में ६ इञ्च लम्बे होते हैं। इसके फूल धुन्धले पीले और सुगन्धित होते हैं। यह वनस्पति हिमालय में ५००० से १०००० फीट की ऊँचाई तक और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ बाधानाशक, आनुलोमिक, मूत्रल और विशेष करके पित्तजनित शिकायतों में लाभ पहुँचाने वाली होती है। छोटे २ फोड़े-फुन्सियों पर यह लेप करने के काम में भी ली जाती है।

इसकी एक दूसरी जाति (Iris Ensata) धातु-परिवर्त्तक होती है और रक्त को शुद्ध करनेवाले कई नुसखों में यह डाली जाती है। व्यभिचार-जनित रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है। यकृत के रोग और जलोदर में भी यह मुफीद मानी जाती है।

सौंफ

नाम—संस्कृत—मधुरिका, शतपुष्पा, मिश्रेया इत्यादि। हिन्दी—सौंफ। गुजराती-सौंफ, बरियारी। बङ्गाल-मौरी। मराठी—बड़ी शेप। बम्बई—बड़ी शोफ। तामिल—सोही किराई। फारसी—बादियान। अरबी—रेभियान्न। अंग्रेजी—Fennel (फेनील) लेटिन—Foeniculum Capillaceum (फोनीक्यूलम केपिलेक्यूम)।

वर्णन—सौंफ की खेती भारतवर्ष में सब ओर की जाती है। इसको सब कोई जानते हैं इसलिए इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सौंफ पचने में चरपरी, गर्भदायक, सारक, कड़वी, चरपरी, मधुर, वीर्यजनक, अग्निदीपक तथा वात, ज्वर, शूल, दाह, नेत्ररोग, प्यास, घाव, अतिसार और आम का नाश करती है।

राजनिघण्टु के मतानुसार सौंफ, मधुर, स्निग्ध, चरपरी, कफनाशक तथा वातपित्त के दोष, प्लीहा और कृमि को दूर करती है।

सौंफ रुचिकारक, वीर्यजनक तथा दाह और रक्तपित्त का नाश करनेवाली होती है।

सौंफ का अर्क शीतल, रुचिकारक, चरपरा, अग्नि को दीपन करनेवाला, पाचक, मधुर तथा तृष्णा, वमन, पित्त और दाह को दूर करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते नेत्रों की दृष्टि को बढ़ाते हैं। इसके बीज तीक्ष्ण, मीठे, शान्तिदायक स्तनों में दूध बढ़ानेवाले, मूत्रल और उत्तेजक होते हैं। इनका लेप बच्चों के पेट पर करने से ये उनकी आँतों की शिकायतों को दूर करते हैं। इसके अतिरिक्त छाती के रोग, तिल्ली के रोग, गुर्दे के रोग, मस्तकशूल, रजःस्रावरोध, खाँसी, दमा और सूजन में ये लाभ पहुँचाते हैं। नेत्रों की दृष्टि को भी ये तेज करते हैं।

डा० देसाई के मतानुसार सौंफ सुगन्धित, दीपन, पाचक और मूत्रल होती है। पेशाब की जलन को कम करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इससे पेशाब साफ हो जाता है। आंव, वमन और अजीर्ण से होनेवाली दस्तों में यह बहुत लाभ पहुँचाती है। बच्चों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी होती है। सूखी खाँसी और मुखरोगों में इसको मुंह में रखकर चूसने से लाभ होता है।

इसकी एक और जाति होती है जो ईरान से यहाँ आती है। इसको फारसी में बादियान और लेटिन में पिम्पिनेला अनीसून (Pimpinella Anisun) कहते हैं। यह बादियान भी सुगन्धित, दीपन और वायु नाशक होती है। इसका तेल कफ के रोगों में बहुत उपयोग में लिया जाता है। इसके दूसरे गुण सौंफ के समान ही हैं।

सौंफ का उपयोग एक सुगन्धित, उत्तेजक और शान्तिदायक पदार्थ की तरह होता है। इसकी जड़ विरेचक होती है और इसके पत्ते मूत्रल होते हैं। मद्रास के अन्दर इसके बीज व्यभिचारजनित रोगों में उपयोग में लिये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यूरोप के अन्दर इसके बीज उत्तेजक, शान्तिदायक और अग्निवर्द्धक माने जाते हैं। पेट की वायु को दूर करने के लिए यह एक विश्वसनीय औषधि मानी जाती है। यह आंतों में होनेवाली मरोड़ों को शान्त करती है। बच्चों के उदरशूल को भी यह दूर करती है और स्त्रियों के मासिकधर्म को नियमित करती है।

केस और महस्कर के मतानुसार इसके बीजों का तेल ६० बूँद की मात्रा में छोटे कृमियों (Hook worms) को नष्ट करने के लिए एक उत्तम वस्तु है।

उपयोग—ज्वर की दाह—सौंफ का हिम बनाकर पिलाने से ज्वर की दाह मिटती है।

आमातिसार—सौंफ को घी में तलकर मिश्री के साथ मिलाकर खिलाने से आमातिसार मिटता है।

बचों का अजीर्ण—सौंफ की फांट बनाकर पिलाने से पेट की शूल और बच्चों का अजीर्ण मिटता है।

अतिसार—बेल की गूदा के साथ सौंफ का चूर्ण खिलाने से अजीर्ण मिटता है।

विरेचन—इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से विरेचन होता है।

मूत्र की रुकावट—इसके पत्तों का रस या फांट बनाकर पिलाने से पेशाब की रुकावट मिटकर पेशाब अधिक होने लगता है।

नेत्रों की ज्योति—सात माशे सौंफ और सात माशे मिश्री की सोते समय फक्की लेने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

बनावटें—स्वर्गीय ठण्डाई—सौंफ, कासनी, काहू के बीज, कुलफे के बीज, गुलाब के फूल, कमलगट्टे की मगज, चन्दन का बुरादा, खस, काली मिरच, सफेद मिरच, छोटी इलायची, ककड़ी के बीजों की मगज, खरबूजे के बीजों की मगज और पेठे के बीजों की मगज ये सब चीजें दो-दो तोला लेकर कूटकर एक बोतल में रख लें।

गरमी के दिनों में उपर्युक्त स्वर्गीय ठण्डाई को एक तोले की मात्रा में लेकर पांच सात बदाम की मगज के साथ सिल पर खूब महीन पीसें और एक गिलास जल में छानकर पी लें। अगर किसी को भांग माफकत हो तो दो-चार रत्ती भांग भी एक खुराक में डाल दें। जो लोग गरमी के दिनों में नियमित रूप से इस ठण्डाई का सेवन करते हैं उन्हें गरमी से होनेवाली कोई व्याधियां नहीं होतीं। लू का लगना, पित्तज्वर, गरमी से सिर का चकराना, दस्त, वमन, हैजा इत्यादि गरमी से होनेवाली अनेक प्रकार की व्याधियों से वे बचे रहते हैं। ग्रीष्मकाल में यह ठण्डाई एक अमृत के तुल्य वस्तु है।

हब-एल-घर

नाम—भारतीय बाजार—हब्—एल—घर। यूनानी—झकनी, झपनी। इंग्लिश—Sweet Bay (स्वीट बे)। लेटिन—Laurus Nobilis (लौरस नोबिलिस)।

वर्णन—हब्-एल्-घर के नाम से एक प्रकार के काले और भूरे रंग के सूखे हुए फल मिश्र देश से यहाँ पर बिकने के लिए आते हैं। ये मुसलमान पसारियों के यहाँ बिकते हैं। ये लम्बगोल, सुगन्धित और स्वाद में तीखे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह औषधि सुगन्धित और उत्तेजक होती। मज्जातंतु और मस्तिष्क को उत्तेजना देने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसके फलों को शराब में मिलाकर कफ रोगों में देते हैं। इसको देने से ज्वर कम होता है, कफ छूटता है और रोगी को उत्तेजना मिलती है।

हथजोड़ी

इस वनस्पति का वर्णन 'बखूर-इ-मरियम' के नाम से इस ग्रन्थ के सातवें भाग में देखें।

हलियून

नाम—हिन्दी—हलियून। इंग्लिश—Asparagus (एस्पेरेगस)। लेटिन—Asparagus Officinalis (एस्पेरेगस ऑफिसिनेलिस)। अरबी—इस्फेराज। ईरान—हालियून।

वर्णन—यह शतावरी के वर्ग की एक बनस्पति होती है। इसके फूल छोटे और कुछ हरापन लिये हुए सफेद होते हैं। इस वनस्पति की खेती उत्तरी भारत में की जाती है। इसके अंकुरों की तरकारी बनाई जाती है। इसके फल हलियून के नाम से बिकते हैं। वे ईरान से यहाँ आते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति मूत्रल, मृदु विरेचक, हृदय को शक्ति देनेवाली और उपशामक होती है। इसके अंकुर वायुनाशक, मृदु विरेचक और मूत्रल होते हैं, इसके फल गर्भस्थापक और जड़ स्निग्ध तथा पौष्टिक होती है।

इसकी जड़ों में इसके अंकुरों से मूत्रल तत्व अधिक तादाद में पाये जाते हैं। इसकी जड़ों का शीत निर्यास पीलिया रोग को नष्ट करने के लिए दिया जाता है। यह यकृत की जड़ता या सुस्ती को दूर करता है।

इंग्लैण्ड में इस वनस्पति के पंचांग से एक टिंक्चर बनाया जाता है जो पेशाब की जलन और संधिवात तथा गठिया में उपयोगी समझा जाता है।

अमेरिका में यह वनस्पति निर्विवाद रूप से एक उपशामक पदार्थ मानी जाती है और हृदय की सब प्रकार की शिकायतों में यह एक उपशामक और शान्तिदायक द्रव्य की तरह दी जाती है। नाड़ी की तेज गति को ठीक करने के लिए भी इसका उपयोग होता है।

इसके फल को शराब के साथ देने से स्त्री का गर्भाशय गर्भधारण के योग्य हो जाता है। इसकी जड़ें पथरी, गर्भाशय का शूल, हृदय की धड़कन, हृदयोदर, श्लीपद, वातरक्त इत्यादि रोगों में दी जाती हैं।

हरड़

नाम—संस्कृत—हरीतकी, अभया, पथ्या, अमृता, अव्यथा, शिवा, वयस्था, विजया, जीवन्ती, सुधा, बल्या, रसायनफला, रुद्रप्रिया, सुधोद्भवा, प्राणदा, जीव्या, देवी, दिव्या, गिरिजा इत्यादि। हिन्दी—हरड़, हर्र, । बंगला—हरीतकी। गुजराती—हरडे। मराठी—हरड़ा। पंजाब—हर्र। तैलगू—हरीतकी। इंग्लिश—Myrobalans (मायरोबेलेन्स)। लेटिन—Terminalia Chebula (टर्मिनेलिया चेबुला)।

वर्णन—हरड़ के वृक्ष उत्तरी भारत, बंगाल, बम्बई प्रान्त, कोकण, मद्रास, प्रेसीडेन्सी, काठियावाड़ इत्यादि भारत के अनेकानेक स्थानों में पैदा होते हैं। मगर हिमालय और पार्श्वनाथ पहाड़ पर पैदा होनेवाली हरड़ उत्तम होती है। इसका वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। इस वृक्ष का पिण्ड लम्बा और सीधा होता है। इसकी छोटी शाखों, निकलते हुए पत्तों और छोटे कोमल पत्तों पर लोहे के जङ्ग के समान और कभी-कभी रूपहरी रङ्ग के रुँएँ होते हैं। इसके अलग-अलग थोड़ी २ दूर पर अडूसे के पत्तों के समान अथवा धावड़ी के पत्तों के समान तीन से आठ इञ्च तक लम्बे पत्ते लगते हैं। इसके फूल थोड़े सफेद अथवा पीले रंग के होते हैं। उनमें बहुत दुर्गन्ध आती है। इसका फल एक से लेकर दो इञ्च तक लम्बा होता है। पर एक फल हर पाँच स्पष्ट रेखाएँ होती हैं।

इन वृक्षों पर एक प्रकार के अपरिपक्व काली द्राक्षा के समान फल लगते हैं। ये सूखने पर काले, लम्ब-गोल, बाँके टेढ़े और छोटे छोटे होते हैं। इन्हें मराठी में बाल हरड़ और हिन्दी में जौ हरड़ कहते हैं। इनका विरेचन के द्रव्यों में विशेष उपयोग होता है।

हरड़ एक एसी वनस्पति है जिसके सम्बन्ध में आयुर्वेद के प्रवर्त्तक महर्षियों ने बहुत बारीक अध्ययन किया है। वे लोग इस महान् वनस्पति के बहुत निकट सम्पर्क में रहे और उन्होंने इसकी भिन्न-भिन्न जातियों का, इसके सूक्ष्म रासायनिक तत्व का और मनुष्य शरीर पर होनेवाले इसके विलक्षण प्रभावों का बहुत ही दिलचस्पी से अध्ययन किया था।

उनके मत से हरड़ की सात जातियाँ होती हैं। विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवन्ती और चेतकी।

विजया हरड़ तुम्बी के आकृति समान होती है, रोहिणी गोल होती है, पूतना हरड़ छोटी गुठलीवाली होती है, अमृता नामक हरड़ मोटी होती है, अभया हरड़ पाँच रेखावाली होती है, जीवन्ती हरड़ स्वर्ण के समान पीले रंग की होती है और चेतकी हरड़ तीन रेखावाली होती है। इनमें चेतकी हरड़ काली और सफेद के भेद से दो प्रकार की होती है। सफेद जाति छः अंगुल लम्बी और काली जाति (सम्भवतः यही जौ या बाल हरड़ है) एक अंगुल लम्बी होती है?

विजया हरड़ विन्ध्याचल पर्वत में पैदा होती है। पूतना और चेतकी हरड़ हिमालय पर्वत में पैदा होती है। रोहिणी हरड़ सिन्धु नदी के तीर पर होती है। अमृता और अभया हरड़ चम्पा देश में बहुत होती है, जीवन्ती हरड़ सोराष्ट्र देश में उत्पन्न होती है और विजया हरड़ सर्वत्र पैदा होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल जो हरड बाजार में मिलती है वह विशेष कर विजया जाति की होती है क्योंकि उसका आकार तूम्बी के समान लम्बगोल होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदीय चिकित्सा-विज्ञान में हरड़ एक अत्यन्त प्रभावशाली, दिव्य और रसायन औषधि मानी गई है। प्राचीन चिकित्सा-शास्त्रियों की इस बनस्पति पर कितनी श्रद्धा थी यह उनके द्वारा इस वनस्पति के रक्खे हुए नामों से ही प्रकट होता है। इसकी विवेचना करते हुए एक स्थान पर लिखा है:—

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी। कदाचित् कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतकी॥

अर्थात्—हरीतकी मनुष्यों के लिए माता के समान हित करने वाली है। कदाचित् माता तो कभी-कभी क्रोधित भी हो जाती है मगर पेट में गई हुई हरीतकी कभी कुपित नहीं होती।

'यस्य माता गृहे नास्ति तस्य माता हरीतकी'।

जिसकी रक्षण करने वाली माता गृह में न रहा हो उसकी माता हरीतकी को समझना चाहिए।

हरड़ के सम्बन्ध में प्राचीन वनस्पति शास्त्र के अन्दर बहुत अधिक अध्ययन किया गया है। इसके अन्दर कौन कौन से रस रहते हैं? शरीर के अन्दर भिन्न २ अवयवों पर इसके क्या प्रभाव होते हैं? सारे शरीर के संगठन पर यह क्या असर डालती है? इन सब बातों का बड़ा विस्तार से विवेचन किया गया है।

हरड़ के गुण-धर्म का विवेचन करते हुए निघण्टुरत्नाकर में लिखा है कि—

हरीतकी तु संप्रोक्ता, पञ्चभिस्तु रसैयुता। लवणेन च सा हीना योगवाही रसायनी॥
अग्निदीप्तिकरी लध्वी, सरा मेध्या च लेखनी। वातानुलोमनी हृद्या चक्षुष्या स्मृतिकारिका॥
वयसः स्थापनी बल्या बुद्धिदा कुष्ठनाशिनी। विवर्णतानाशिनी वै चेन्द्रियाणां प्रसादनी॥
शिरोरोगं नेत्ररोगं वैस्वर्यं विषमज्वरम्। पुराणं च ज्वरं पाण्डुं हृद्रोगं कामलां तथा॥
शोषं शोथं मूत्रघातं ग्रहणीं चातिसारकम्। अश्मरीं च ज्वरं मेहं कृमिं श्वासं विषोदरम्॥
कासं घर्मं मलस्तम्भमानाहं कर्णरोगकम्। अर्शः प्लीहां त्रिदोषं च गुल्मं हिक्कां व्रणं तथा॥
ऊरुस्तम्भं च शूलं च नाशयेदरुचिं तथा।

अर्थात्—हरड़ पाँच रसों से (खट्टा, मीठा, कड़वा कसैला, चरपरा) युक्त होती है, सिर्फ लवण या खारा रस इसमें नहीं होता। यह योगवाही, रसायन, अग्निदीपक, हलकी, दस्तावर, मेधाजनक, लेखन, वात को अनुलोमन करनेवाली, हृदय को बल देनेवाली, नेत्रों की ज्योति को बढ़ाने वाली, स्मृतिकारक, अवस्थास्थापक, बलकारक, कोढ़ को नष्ट करने वाली, विवर्णतानाशक, इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाली तथा मस्तक रोग, नेत्र रोग, स्वरभङ्ग, विषमज्वर, जीर्णज्वर, पाण्डु रोग, हृदय रोग, कामला, शोष, सूजन, मूत्राघात, संग्रहणी, अतिसार, पथरी, वमन, प्रमेह, कृमि, श्वास, विष, उदर रोग, खाँसी, पसीना, मलस्तम्भ, आनाह, कर्णरोग, बवासीर, प्लीहा, गुल्म, हिचकी, व्रण, ऊरुस्तम्भ, शूल और अरुचि का नाश करती है।

हरड़ की मज्जा में मधुर रस, नसों में अम्ल रस, डंठल में तिक्तरस, छाल में कटु रस और अस्थियों में कसैला रस रहता है।

हरड़ दांतों से चबाकर खाने से अग्नि को बढ़ाती है, पीसकर खाने से मल का शोधन करती है। पकाई हुई खाने से मल को रोकती है और भुनी हुई खाने से त्रिदोष को नष्ट करती है।

हरड़ को भोजन के साथ सेवन करने से बुद्धि और बल को बढ़ाती है, इन्द्रियों को प्रकाशित करती है, वात, पित्त और कफ के दोषों को नष्ट करती है तथा मल और मूत्र को निकालती है। भोजन के पश्चात् सेवन की हुई हरड़ अन्न और जल के दोषों को दूर करती है तथा वात, पित्त और कफ से उत्पन्न दोषों को दूर करती है।

हरड़ लवण के साथ कफ को, मिश्री के साथ पित्त को और घी के साथ वात के रोगों को और गुड़ के साथ सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करती है।

हरड़ वर्षा ऋतु में सेन्धे नमक के साथ, शरद् ऋतु में पीपर के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ और ग्रीष्म में गुड़ के साथ परम रसायन का काम करती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हरड़ से दूनी मुनक्का 'द्राक्षा' लेकर और उनको घोटकर बहेड़े के बराबर गोलियाँ बनावें। इस कल्याणकारी गोली को प्रातःकाल में जो मनुष्य सेवन करता है वह पित्त रोग, हृदय रोग, रक्तदोष, विषमज्वर, पाण्डु रोग, वमन, कुष्ठ, खाँसी, कामला, अरुचि, प्रमेह, आनाह, गुल्म इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों पर विजय प्राप्त करता है।

उत्तम हरड़ की पहचान—जो हरड़ नवीन, स्निग्ध घन, गोल, भारी और पानी में डालने पर डूब जाती है वह हरड़ अत्यन्त गुणवाली और श्रेष्ठ होती है। जो हरड़ उपर्युक्त गुणों से युक्त हो और वजन में चार तोले के करीब हो उसे सर्वगुण-सम्पन्न समझना चाहिए।

महर्षि चरक लिखते हैं कि रसायन कार्य के लिए हरड़, आँवला इत्यादि फल हिमालय में उत्पन्न हुए ही लेना चाहिए। श्रेष्ठ हिमालय पर्वत ओषधियों की उत्कृष्ट भूमि है। अतः अनुकूल ऋतुओं में उत्पन्न हुए फलों को हिमालय पर्वत से ही समय पर यथाविधि ग्रहण करें। वे फल रस और वीर्य से पूर्ण होने चाहिए। सूर्य की धूप, जल, छाया और वायु से तृप्त होने चाहिए अर्थात् समय-समय पर धूप आदि से जिनका संसर्ग होता रहता हो। जो जले, सड़े, गले, चोट खाये हुए या रोगयुक्त न हों।

हरड़ के गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं कि 'संसार के अन्दर दो प्रकार के रसायन द्रव्य होते हैं। एक अवस्थास्थापक अथवा जीवनी शक्ति (Vitality) को बढ़ाने वाले और दूसरे रोगनिवारक (Immunity) शक्ति को बढ़ाने वाले, अवस्थास्थापक द्रव्यों में आँवला सर्व-श्रेष्ठ होता है और रोगनिवारक द्रव्यों में हरड़ अपना जोड़ नहीं रखता। आँवला शीतवीर्य होता है और हरड़ उष्णवीर्य।'

आगे चलकर महर्षि चरक लिखते हैं कि—हरड़ कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त्त, शोष, पाण्डु रोग, मद, अर्श, संग्रहणी, पुराना विषम ज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, खाँसी, प्रमेह, आनाह, प्लीहा, नवीन उदर रोग, स्वरभङ्ग, विवर्णता, कामला, कृमिरोग, शोथ, तमक श्वास, वमन, नपुंसकता, अङ्गों की शिथिलता, छाती और फुफ्फुस में कफ का भर जाना, स्मृति और बुद्धि का नाश आदि रोगों को शीघ्र ही जीत लेती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका कच्चा फल संकोचक और मृदुविरेचक होता है। यह अतिसार और रक्तातिसार में लाभदायक होता है। इसका पका हुआ फल विरेचक, पौष्टिक और पेट के आफरे को दूर करनेवाला होता है। यह रक्तवर्द्धक होता है तथा नेत्ररोग, बवासीर और जुकाम में लाभदायक होता है। यह मस्तिष्क, नेत्र और मसूड़ों को मजबूत करता है। पक्षाघात रोग में भी यह उपयोगी है।

अरब के लोगों का विश्वास है कि जिस प्रकार घर की सम्हाल रखने में स्त्री दक्ष होती है उसी प्रकार पेट की सम्हाल रखने में हरड़ एक बहुत उपयोगी वस्तु है।

हरड़ का प्रधान कार्य शरीर में विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाल कर शरीर के प्रत्येक अङ्ग की क्रियाशीलता को व्यवस्थित करना है। पेट, रक्त, मस्तिष्क, हृदय या जननेन्द्रियों में जहाँ भी कहीं विजातीय सामग्री होगी, वहीं से यह उसे बाहर निकाल कर उस स्थान का शोधन कर देगी। इसी विलक्षण सामर्थ्य की वजह से ही प्राचीन चिकित्सा-विज्ञान में इसकी इतनी कीर्त्ति है। आधुनिक पाश्चात्त्य चिकित्साविज्ञान ने अभी तक इस वनस्पति को पूरी कद्र के साथ नहीं अपनाया है, मगर आयुर्वेदिक चिकित्सा हजारों वर्षों से इस वस्तु का उपयोग बहुत सफलता के साथ, एक तात्कालिक रोग निवारक औषधि की बतौर नहीं प्रत्युत एक जीवन-विनिमय-क्रिया को सुधारनेवाली रसायन ओषधि की बतौर करते आये हैं। हमारे यहाँ छोटे बच्चों को जन्म के साथ ही हरड़ की घुटी देने का रिवाज है। हरड़ की इस घुटी से तात्कालिक उपद्रवों से तो बच्चा सुरक्षित रहता ही है मगर उसके रक्त में ऐसी रोग-प्रतिरोधक शक्ति पैदा हो जाती है जो जीवन भर उसका साथ देती है।

हरड़ पेट में जाकर पहले कुछ दस्तों के द्वारा शरीर में एकत्रित विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालती है। जब ये विजातीय तत्त्व बाहर निकल जाते हैं तब ये दस्तें लगना अपने आप बन्द हो जाती है। इन विजातीय तत्त्वों के निकल जाने के पश्चात् जठराग्नि बहुत प्रबल हो जाती है और संग्रहणी तथा अजीर्ण की वजह से होनेवाले अनियमित दस्त भी बन्द हो जाते हैं। पृथ्वी के ऊपर जितनी जाति के फल हैं उनमें बिना किसी प्रकार की प्रतिक्रिया या नुकसान पहुँचाये केवल हित ही हित करनेवाले तीन प्रकार के फल प्राचीन ऋषियों को दिखलाई दिये। ये तीनों फल हरड़, बहेड़ा और आँवला हैं जिनका सम्मिलित नाम उन्होंने 'त्रिफला' दिया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राचीन वैद्यों ने इस त्रिफले का अथवा इसमें पड़नेवाली एक-एक वस्तु का स्वतन्त्र रीति से मानव शरीर में होनेवाली लगभग सब प्रकार की व्याधियों पर उपयोग किया है। इनमें भी हरड़ का उपयोग सबकी अपेक्षा अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। आजकल के वैद्य भी दमा, खाँसी, प्रमेह, नेत्ररोग, अर्श, कुष्ठ, सूजन, उदररोग, कृमि, स्वरभङ्ग, कब्जियत, विषमज्वर, वायुगोला, कामला, शूल, संग्रहणी इत्यादि रोगों पर भिन्न २ अनुपानों के साथ हरड़ का उपयोग सफलतापूर्वक करते हैं।

डा० देसाई के मतानुसार हरड़ मृदु विरेचक, बवासीर को नष्ट करनेवाली, शोथ-नाशक, रक्तसंग्राहक, कामोद्दीपक, व्रणरोपक और अवस्था स्थापक होती है। यह सारे शरीर की विनिमय क्रिया को सुधारती है इसलिए इसको रसायन कहते हैं। इससे भूख लगती है, अन्न पचता है और दस्त साफ होता है। कोठा साफ करने के लिए इसको देने पर पहले दस्त लगकर कोठा साफ हो जाता है मगर साफ होने पर फिर दस्त अपने आप बन्द हो जाते हैं। इससे न तो पेट में मरोड़ी चलती है, न जम्भाइयाँ आती हैं, और न किसी प्रकार का कष्ट होता है। दालचीनी के समान कोई सुगन्धित पदार्थ मिला देने से इसकी क्रिया और भी सुधर जाती है। इसको लम्बे समय तक सेवन करने से भी किसी प्रकार की हानि नहीं होती। इसके सेवन से हृदय और रक्तवाहिनियों की शिथिलता दूर होती है। रक्ताभिसरण क्रिया में सुधार होने से मस्तिष्क में अधिक रक्त पहुँचाता है, जिससे मस्तिष्क में तरावट आती है, नींद अच्छी आती है वीर्य गाढ़ा होता है और स्त्री-सम्भोग में आह्लाद उत्पन्न होता है। शरीर का रङ्ग सुधरता है और वजन बढ़ता है। हरड़ की ये क्रियाएँ कम से कम एक महीने तक लेते रहने पर दिखलाई देती हैं।

बाल हरड़ या जौ हरड़ मृदुविरेचक, वायुनाशक और बलकारक होती है। यह बड़ी हरड़ के समान रसायन-धर्मवाली नहीं होती, इसकी क्रिया सिर्फ पाचन-नलिका पर होती है। नमक मिलाने से इसकी क्रिया विशेष उत्तम हो जाती है।

कुपचन रोगों में बड़ी हरड़ बहुत उत्तम वस्तु है, अतिसार, आँव और आँतों की शिथिलता में इसका उत्तम प्रभाव दिखलाई देता है। बवासीर के रोग में इसको सेंधे नमक के साथ देते हैं, खूनी बवासीर में इसका क्वाथ बनाकर दिया जाता है। अर्श की सूजन को उतारने और उसकी वेदना को दूर करने के लिए इसको पानी में पीसकर लेप करते हैं।

जीर्णज्वर और प्लीहा की वृद्धि में हरड़ का चूर्ण विड लवण के साथ दिया जाता है। यद्यपि इससे प्लीहा का संकोचक होने में अधिक समय लगता है फिर भी उसके मध्य में रोगी के स्वास्थ्य में काफी सुधार हो जाता है। किसी भी स्थान से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने में भी हरड़ एक उत्तम वस्तु है।

कितने ही लोगों को अधिक पसीना आने, नाक बहने और सर्दी होने पर बहुत लम्बे समय तक कफ पड़ने की आदत होती है और कुछ मनुष्यों को जरा चोट लगते ही पीब बहने की आदत होती है ऐसे मनुष्यों को हरड़ का सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

वीर्य पतला हो गया हो तथा जननेन्द्रिय में शिथिलता आ गई हो तो हरड़ के रसायन का सेवन करने से वह दूर हो जाती है।

मुख के व्रणों पर इसका लेप किया जाता है, गले की सूजन या गले के भीतर गठान होने पर हरड़ को पानी में पीसकर लेप करते हैं।

बाल हरड़ या जौ हरड़, अजीर्ण की वजह से होनेवाले दस्त, मरोड़ी, जीर्ण-अतिसार, जीर्ण आँव, गुल्म, प्लीहावृद्धि और बवासीर रोग में बहुत गुणकारी होती है। हमेशा की आदतन कब्जियत में अङ्गरेजी औषधि कास्करा सेग्रेडा जैसा लाभ बतलाती है उससे भी अधिक यह छोटी हरड़ दिखलाती है। कब्ज को नष्ट करने के लिए कई महीनों तक इसको देते रहने पर भी कोई हानि नहीं होती। कब्ज की वजह से होनेवाले बवासीर में भी यह उपयोगी होती है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार हरड़ बवासीर रोग में बहुत उपयोगी होती है। इसके चूर्ण को गुड़ में मिलाकर खाने से खूनी और भीतरी बवासीर में बहुत लाभ होता है।

सुश्रुत के मतानुसार श्लीपद रोग में हरड़ का पिसा हुआ चूर्ण तथा गोमूत्र के साथ देने से बहुत लाभ होता है। लगातार कायम रखनेवाली हिचकी में हरड़ का चूर्ण गरम पानी के साथ देने से हिचकी बन्द हो जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—पके हुए हरड़ के फल में २५ प्रतिशत टैनिक एसिड (कषायाम्ल द्रव्य), एक कड़ुवा पदार्थ और राल रहती है। बाल हरड़ में हरे रङ्ग की तेलिया राल रहती है जो अलकोहल में घुलनशील होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हरड़ का रसायन प्रयोग—महर्षि चरक ने लिखा है—पुनर्यौवन प्राप्त करने के लिए तथा कायाकल्प करने के लिए हरड़ के बनाये हुए रसायन का कुटी-प्रावेशिक विधि से सेवन करना चाहिए। कुटी-प्रावेशिक विधि का विवेचन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में आंवले के प्रकरण में किया जा चुका है।

उपयोग—दमा—हरड़ को कूटकर चिलम में भरकर उसका धूम्रपान करने से दमे का दौरा मिटता है।

आमातिसार—हरड़ का मुरब्बा खिलाने से आमातिसार और मन्दाग्नि मिटती है।

घाव—फैले हुए घाव को हरड़ के क्वाथ से धोने से वह सिमिट जाता है।

अग्निदग्ध—हरड़ को पानी में घिसकर उसमें चारोदक और अलसी का तेल मिलाकर, अग्नि से जले हुए या गरम जल से जले हुए स्थान पर लेप करने से घाव बहुत जल्दी अच्छे हो जाते हैं।

बद्धकोष्ठ—हरड़, सनाय और गुलाब के गुलकन्द की गोलियाँ बनाकर खाने से बद्धकोष्ठ मिटता है।

दंतरोग—हरड़ के चूर्ण का मंजन करने से दाँत साफ और नीरोग रहते हैं। हरड़ और कत्थे को मिलाकर चूसने से दाँत मजबूत होते हैं।

आधा शीशी—हरड की गुठली को पानी के साथ पीसकर लेप करने से आधाशीशी मिटती है।

आँख से पानी बहना—इसकी छाल को महीन पीस कर अञ्जन करने से आँख से पानी का बहना बन्द हो जाता है। हरड़ को रात भर पानी में भिगोकर प्रातःकाल उस जल से आँखें धोने से आँखें बहुत शीतल रहती हैं और उनकी ज्योति बढ़ती है।

मद और मूर्च्छा—हरड़ के क्वाथ से सिद्ध किये हुए घी का सेवन करने से मद और मूर्च्छा मिटती है।

रक्तपित्त—हरड़ के चूर्ण को अडूसे के स्वरस की सात भावना देकर शहद के साथ चाटने से रक्तपित्त मिटता है।

विषमज्वर—शहद के साथ हरड़ का चूर्ण चटाने से विषम ज्वर छूट जाता है।

बवासीर—हरड़, बहेड़ा और आँवला एक २ तोला, मिश्री २ तोला इन सबको गुलाबजल में घोट कर गोलियाँ बना लेना चाहिए, इन गोलियों को सात माशे की मात्रा में सेवन करने से बवासीर मिटती है।

मोतियाबिन्द—हरड़ की मींगी को पानी में ३० पहर तक घोटकर गोली बनाकर अञ्जन करने से मोतिया-बिन्द की प्रारम्भिक अवस्था में लाभ होता है।

मुखरोग—हरड़ के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से सब प्रकार के मुखरोग मिटते हैं।

अम्लपित्त—हरड़ के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से अथवा गुड़ के साथ गोली बनाकर खिलाने से अम्लपित्त मिटता है।

पाण्डुरोग—हरड़ को गोमूत्र में पकाकर खिलाने से पाण्डुरोग और शोथ मिटता है।

श्लीपदरोग—हरड़ को अरण्डी के तेल में पकाकर सात दिन तक पीने से श्लीपदरोग में लाभ होता है। हरड़ को गोमूत्र के साथ पीस कर पीने से भी श्लीपदरोग मिटता है।

अण्डवृद्धि—जौ हरड़ और सेंधे नमक को अरण्डी के तेल और गोमूत्र में पकाकर गरम जल के साथ लेने से पुरानी अण्डवृद्धि मिटती है अथवा इसके चूर्ण को अरण्डी के तेल में मिलाकर चाटने से गृध्रसी और अण्डवृद्धि मिटती है।

वातरक्त—तीन-चार जौ हरड़ को दुगुने गुड़ में गोली बनाकर उसको खाकर ऊपर से नीम गिलोय का क्वाथ पीने से कुछ दिनों में बढ़ा हुआ वातरक्त भी मिट जाता है।

बनावटें—अमृत हरीतकी—उत्तम बड़ी जाति की हरड़ एक सौ लेकर उनको गाय के मट्ठे में उबालना चाहिए। जब हरड़ें अच्छी तरह पक जाँय तब उनको मट्ठे में से निकाल कर उनमें से प्रत्येक हरड़ का सिरा काट कर उसमें से गुठलियां निकाल डालनी चाहिए। उसके पश्चात् सोंठ, मिर्च, पीपर, पीपलामूल, चित्रक की जड़, चव्य, सेंधा नमक, संचर नमक, विड नमक, समुद्र नमक, अजवाइन, यवक्षार, सज्जीक्षार, भुनी हुई हींग और लवण ये सब चीजें दो-दो तोला और निसोत आठ तोला इन सब चीजों का चूर्ण करके उसे तीन दिन तक नींबू के रस में भिगो देना चाहिए। फिर उसी चूर्ण को उन गुठली निकाली हुई हरड़ों में भर देना चाहिए। फिर उन हरड़ों को धूप में रखकर अच्छी तरह सुखा कर एक बोतल में भर कर रख देना चाहिए। यह अमृतहरीतकी कहलाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन हरड़ों में से प्रतिदिन सवेरे एक हरड़ लेकर सेवन करने से अजीर्ण और मन्दाग्नि से होनेवाले नाना प्रकार के रोग दूर होते हैं। जठराग्नि बहुत प्रबल हो जाती है। देश-देशान्तरों का पानी लगने से होनेवाली बीमारियाँ भी मिट जाती हैं। हैजे के दिनों में अगर प्रतिदिन एक हरड़ का सेवन कर लिया जाय तो हैजा होने का भय नहीं रहता।

अगस्त्य-हरीतकी—बेल की जड़, अरणी की जड़, अडूसा की जड़, पाढल की जड़, गंभारी की जड़, बड़ी कटेरी की जड़, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, गोखरू की जड़, शंखाहुली, कंघी की जड़, गजपीपर, भारंगी, कूठ, अपामार्ग की जड़, पीपलामूल, चित्रक की जड़, ये सब चीजें आठ २ तोला लेकर, जौ कुट करके बत्तीस सेर पानी में औटाना चाहिए और इस पानी में २५६ तोला जौ तथा एक सौ उत्तम जाति की बड़ी हरड़ लेकर एक पतले कपड़े की पोटली में बाँधकर डाल देना चाहिए, इस पानी को औटाते २ जब चौथाई पानी शेष रह जाय तब उसे उतार कर छान लेना चाहिए और हरड़ों में से गुठलियाँ निकालकर उनके गर्भ तथा जौ को एक मजबूत खादी के कपड़े में डाल कर छान लेना चाहिए और उनमें से निकले हुए कूचों को फेंक देना चाहिए। इस प्रकार निकले हुए जौ और हरड़ के गर्भ को सोलह तोला घी में भून लेना चाहिए। फिर उस क्वाथ के आठ सेर पानी में पुराना गुड़ चार तोला और हरड़ तथा जौ का गर्भ मिला कर आंच पर चढ़ा देना चाहिए। जब वह अवलेह के समान हो जाय तब उसे नीचे उतार कर उसमें सोलह तोला छोटी पीपर का चूर्ण तथा तज, तमालपत्र, इलाइची और नागकेशर का एक-एक तोला चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह मिला लेना चाहिए। ठण्डा होने के पश्चात् उसमें सोलह तोला शहद भी मिला लेना चाहिए। यह अगस्त्य-हरीतकी कहलाती है जिसका आविष्कार महर्षि अगस्त्य ने किया था।

इस अगस्त्य-हरीतकी को एक से लेकर चार तोले तक की मात्रा में सवेरे-शाम सेवन की जाय तो दमा, खाँसी, क्षय, हिचकी, हृदयरोग, पाण्डु, संग्रहणी इत्यादि अनेक रोगों में ल.भ पहुँचाती है।

अभयामोदक—हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, तज, तमालपत्र, इलायची के बीज, नागकेशर, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपर, धनियां, बरियारी और लौंग ये सब चीजें एक-एक तोला, निसोत की जड़ की छाल आठ तोला, सनाय आठ तोला और उत्तम जाति की गुठली निकाली हुई बड़ी हरड़ ३२ तोला लेकर सब का महीन चूर्ण करके चौंसठ तोला शक्कर की गोलीबन्द चासनी में इस चूर्ण को मिलाकर ऊपर से सोलह तोला गुलाब के फूल और सोलह तोला बीज निकाली हुई काली द्राक्षा मिलाकर खूब हिलाकर एकजीव कर देना चाहिए। फिर इसको वैसे ही या गोलियाँ बाँध कर बरणी में भर देना चाहिए।

यह अभयामोदक एक उत्तम और सौम्य विरेचक है, इसको ६ माशे से एक तोला की मात्रा में खाकर ऊपर से गरम जल पीना चाहिए। इसके सेवन से भोजन के पश्चात् होनेवाला उदरशूल, खट्टी डकारें, अम्लपित्त, बवासीर इत्यादि रोगों में लाभ होता है। हमेशा की कब्जियत को दूर करने के लिए यह एक उत्तम औषधि है। इससे बिना पेट में किसी प्रकार की काट हुए, बिना आँतों में जलन हुए सौम्य विरेचन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त हरड़ और आँवले के संयोग से बननेवाले दिव्य 'ब्राह्म रसायनों' का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में आँवले के प्रकरण में दे दिया गया है।

हरकुच कांटा

नाम—संस्कृत—हरिकुश। हिन्दी—हरकुच कांटा, हर्कुकान्त। बङ्गाल—हरगोजा, हरकुचकांटा, केण्टकी। बम्बई—निवागुर। मराठी—मारांण्डी, मेरण्डली मोराव्रा। तामिल—कलुदेमुल्लि। तैलगू—एतिचिल्ला। इङ्गलिश—Sea Holly (सी होली)। लेटिन—Acanthus ilicifolius (एकेन्थस एलिसिफोलियस)।

वर्णन—यह झाड़ीनुमा छोटी जाति का क्षुप खारी जमीनों में अधिक पैदा होता है। इसके पत्ते ७-५ से लेकर १५ सेंटीमिटर तक लम्बे और ५ से लेकर ६-३ सेंटीमिटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद और बैगनी होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में समुद्री किनारों पर पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति क्षारस्वभावी, दुग्धवर्द्धक और कफनाशक होती है। यह एक उत्तम, औषधि है क्योंकि इसमें कफ को ढीला करनेवाला क्षार और उसको बाहर निकाल देनेवाला स्निग्ध पदार्थ दोनों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

साथ रहते हैं। प्राचीन कफप्रधान रोगों में और दमे में यह ओषधि विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होती है। आमवात, वातनाड़ी की पीड़ा और अर्द्धाङ्ग वायु में इसको द्राक्षासव के साथ देते हैं। अम्लपित्त में इसके पंचांग का क्षार दिया जाता है सूजन पर इसके पत्तों को पीस कर बाँधा जाता है।

कोकण में इस वनस्पति का काढ़ा मिश्री और जीरा मिला कर खट्टी डकारों के साथ होनेवाले अजीर्ण में देते हैं। गोआ के अन्दर सन्धिवात, गृध्रसी और स्नायुशूल पर इसके पत्तों पर तेल लगाकर गर्म करके बाँधते हैं और उन पर सेंक करते हैं।

सियाम में यह वनस्पति हृदय को शक्ति देनेवाली और पक्षाघात तथा दमे के रोग में उपयोगी मानी जाती है।

रीड के मतानुसार इसकी कोमल डालियों और पत्तों को पानी के साथ महीन पीसकर साँप की काटी हुई जगह पर लेप करने के काम में लेते हैं।

केस और महस्कर के मत से यह वनस्पति सर्पविष में निरुपयोगी है।

मात्रा—इसके पत्तों के स्वरस की मात्रा ६ माशे से एक तोला तक है।

हरुच (हिलमोचिका)

नाम—संस्कृत—हिलमोचिका, विषघ्नी, मत्स्याक्षी, त्रिवृत्पर्णी इत्यादि। हिन्दी—हरुच, हिलमोचिका। बंगला—हिंगचो, हिंजेशाक। उड़ीसा—हिरमचा। लेटिन—Enhydra Fluctuans (एनीड्रा फ्लूक्टुअन्स)।

वर्णन—हिलमोचिका क्षुप ब्राह्मी के समान होता है। यह प्रायः जल के निकट पैदा होती है इसके फूल छोटे-छोटे नीले रंग के होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते किंचित् कड़वे, शीतल, मृदु विरेचक तथा सूजन, कुष्ठ, कफ, पित्त, त्वचा के रोग और खाँसी को मिटानेवाले होते हैं। शीतला की बीमारी में भी ये उपयोगी होते हैं।

बंगाल में इसके पत्तों का शाक बनाया जाता है। चर्म रोग और मज्जातन्तुओं के रोगों में इसका स्वरस एक तोले की मात्रा में दिया जाता है। यकृत् की क्रिया को दुरुस्त करने के लिए इसके पत्तों की शाक चावल की पेज में उबाल कर उसमें सेंधा नमक और सरसों का तेल मिलाकर खिलाई जाती है, सुजाक में इसके स्वरस को दूध में मिलाकर देते हैं। मस्तिष्क की गर्मी को कम करने के लिए इसके पत्तों को पीसकर लेप करते हैं। चेचक की बीमारी में इसके स्वरस में मधु मिलाकर पिलाया जाता है।

हरबल (खाजगोली)

नाम—हिन्दी—हरबल। मराठी—खाजगोली ची वेल। तामिल—पुलिन रलाई, सुगमवेल। तेलगू—पुल्ला बेचाली। इंग्लिश—Hairy wild Vine (हेरी वाइल्ड वाइन)। लेटिन—Vitis Setosa (विटिस सेटोसा)।

वर्णन—यह एक जाति की बेल होती है। इसके पत्तों तथा डालियों पर चर्मदाहक बाल रहते हैं। इसका हर एक अङ्ग दाहजनक होता है। यह वनस्पति दक्षिण, कर्नाटक और पश्चिमी घाट में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते बाह्योपचार में त्वचा को उत्तेजित करनेवाले होते हैं। इनका पुलटिस बनाकर फोड़ों को पकाने के लिए उन पर बाँधा जाता है। नारू के ऊपर इनको बाँधने से नारू का जख्म पककर नारू बाहर निकल जाता है।

हरेल चारा

नाम—नैपाल—हरेल चारा। वर्मा—थिंगवे। लेटिन—Jasminum Scandens (जेसमिनम स्केन्डेन्स)।

वर्णन—यह मोगरा या जूही के वर्ग की अत्यन्त सुगन्धित और सफेद फूलोंवाली वनस्पति नैपाल, आसाम तथा बंगाल के पहाड़ों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ दाद पर लगाने के काम में ली जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हरफा रेवड़ी

नाम—संस्कृत—लवली, सुगन्धमूला, स्कन्धफला, कोमलवल्कला। हिन्दी—हरफारेवड़ी, चालमेरी। बंगला—हरी फूल, नौरी, लोडा। गुजराती—खाटी आँवली। मराठी—रायआँवला। कोकण—राजनवल्ली, रोसनवल्ली। बम्बई—हर पारावरी, रायआँवला। तामिल—अरुनोल्ली। तेलगू—राचायुसिरिका। अंग्रेजी—The country Gosseberry (दी कण्ट्री गोसबेरी)। लेटिन—Phyllanthus Distichus (फिलेन्थस डिस्टिचस), Ficca Disticha (फिक्का डिस्टीचा)। उर्दू—हरफ़रोरी।

वर्णन—हरफारेवड़ी की वृक्ष बागों में लगाने लायक बहुत सुन्दर होता है। दक्षिणी भारत के बगीचों में यह बहुत लगाया जाता है। इसका वृक्ष छोटे कद का होता है। इसके पत्ते कसौंदी के पत्तों को तरह होते हैं। इसके फल गूलर के फलों की तरह शाखाओं के पिण्ड में से फूटते हैं। गरमी के प्रारम्भ में इसमें लाल रङ्ग के फूल आते हैं। उसके पश्चात् इसमें खट्टे स्वादवाले गिरदार फल लगते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हरफारेवड़ी कसैली, रुचिकारक, प्रिय, खट्टी, कड़वी, रूखी, विशद, स्वादिष्ट, सुगन्धित, वातवर्द्धक, हलकी तथा कफ, पित्त, मूत्राश्मरी और बवासीर में लाभदायक होती है।

भावप्रकाश के मतानुसार हरफारेवड़ी रुधिर विकार, बवासीर और कफ-पित्त को नष्ट करनेवाली तथा भारी, विशद, रोचक, रूखी, स्वादिष्ट, कसैली और खट्टी होती है।

इसका फल खट्टा और संकोचक होता है। यह भूख को बढ़ाता है, वायुनलियों के प्रदाह को कम करता है और इसके बीज आनुलोमिक होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल अत्यन्त खट्टा, यकृत को शक्ति देनेवाला तथा प्यास, पित्त विकार, वमन और कब्जियत को दूर करनेवाला होता है। यह रक्त को शुद्ध करनेवाला तथा रक्त को बढ़ानेवाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल संकोचक तथा इसकी जड़ और बीज विरेचक होते हैं। इसकी जड़ और इसके पत्ते विषनाशक माने जाते हैं।

हड़ताल

नाम—संस्कृत—हरितालक, हरिताल, छत्रांग, कांचन रस इत्यादि। हिन्दी—हरताल, तबकिया हड़ताल। बङ्गला-हरिताल, हत्तेल। मराठी—हड़ताल। गुजराती-हड़ताल। लेटिन-Arsenii Trisulphidum (आर्सेनि-ट्रिसल्फाइडम)।

वर्णन—हड़ताल एक उपधातु होती है जो खदानों से निकलती है। यह दो प्रकार की होती है। (१) पत्र हड़ताल, (२) पिण्ड हड़ताल। पत्र हड़ताल या तबकिया हड़ताल सोने के समान रङ्गवाली होती है। इसमें अभ्रक के समान तवक या पत्र निकलते हैं। यह गुण और प्रभाव में श्रेष्ठ होती है। दूसरी पिण्ड हड़ताल ढेले की तरह होती है। यह ओषधि प्रयोग के काम में निकृष्ट होती है।

तीसरी एक गोदन्ती हड़ताल का उल्लेख रसायन और निघण्टु ग्रन्थों में देखने में आता है। उसके लिए लिखा हुआ है कि जो गाय के दाँत के समान लम्बे चौड़े आकार में मिलती जुलती हो, सफेद वर्ण की हो, जिसमें नीलवर्ण या पीतवर्ण की रेखा हो तथा जो चिकनी और भारी हो वह गोदन्ती हड़ताल उत्तम होती है। मगर यह हड़ताल कैसी होती है इसके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बाजार में गोदन्ती हड़ताल के नाम से जो वस्तु मिलती है वह तो सम्भवतः यह नहीं है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शुद्ध हड़ताल चरपरी, स्निग्ध, कसैली, गरम, विषनाशक तथा कण्डू, कुष्ठ, मुखरोग, रुधिरविकार, कफ, पित्त, व्रण और वात को दूर करती है।

शोधित हड़ताल कान्तिजनक, वीर्यवर्द्धक, कुष्ठादि रोगनाशक, कफरोग निवारक तथा मृत्यु और बुढ़ापे को दूर करनेवाली होती है। आधी रत्ती से एक रत्ती तक हड़ताल भस्म छः गुनी शक्कर में मिलाकर सेवन करने से अस्सी प्रकार के वातरोग तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, प्रमेह और बवासीर दूर होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अशुद्ध हड़ताल की प्रतिक्रिया—अशुद्ध हड़ताल वायुनाशक, कफकारक, वातवर्द्धक, प्रमेहजनक, विस्फोट-कारक, अङ्गसंकोचक और तापजनक होती है। अशुद्ध अथवा कुविधि से मारी हुई हड़ताल देह की सुन्दरता को नष्ट करनेवाली, घोर ताप को उत्पन्न करनेवाली, अङ्गों को संकुचित करनेवाली, पीड़ा को उत्पन्न करनेवाली, कफ वात को बढ़ानेवाली और कुष्ठ को उत्पन्न करनेवाली होती है।

हड़ताल को शुद्ध करने की विधि—तबकिया हड़ताल को एक कपड़े की पोटली में बाँधकर दोलायन्त्र की विधि से कांजी, पेठे (सफेद कुष्माण्ड) का रस, तिल का तैल और त्रिफले के काढ़े में एक-एक पहर तक पका लेने से वह शुद्ध हो जाती है।

दूसरी विधि—एक सेर कली के बिना बुझाये चूने में चार सेर पानी डालकर दौलायन्त्र की विधि से हड़ताल की पोटली उसमें लटकाकर एक पहर तक मन्दाग्नि के द्वारा तीन बार स्वेदन करने से तबकिया हड़ताल शुद्ध हो जाती है।

तीसरी विधि—सफेद कुष्माण्ड अथवा पेठे का एक फल लेकर उसमें डिगरी लगाकर छेद करके पाव भर तबकिया हड़ताल उसके अन्दर भर देना चाहिए। फिर उसी डिगरी से उसका छेद बन्द करके उस पेठे को एक लोहे की कड़ाही में इस प्रकार रखना चाहिए कि वह छेदवाला भाग ऊपर को तरफ रहे और उस कड़ाहो को मध्यम आंच पर चढ़ा दें। जब पेठा जलते-जलते हड़ताल के समीप तक कड़ाही का पेंदा आ लगे तब कडाही को जमीन पर उतार लें। इस क्रिया से भो हड़ताल शुद्ध ही जाती है।

हड़ताल को भस्म करने की विधि—थूहर के दूध और आक के दूध में दो-दो दिन तक हड़ताल को खरल करके उसकी पूड़ी के समान टिकिया बना लें अगर दोनों प्रकार के दूध न मिल सकें तो किसी एक ही प्रकार के दूध में भी घोटकर उसकी टिकिया बनाई जा सकती है। उस टिकिया को एक महीने तक किसी बर्तन में रखकर जमीन में गाड़ दें। फिर उस टिकिया को खूब सुखाकर चूने से भरे हुए 'खल्व सुधायन्त्र' में रखकर पाँच दिन की अग्नि देने से हड़ताल की भस्म हो जाती है।

खल्व सुधा यन्त्र—पहले एक लोहे के खरल पर तीन कपरौटी कर लें। फिर उसमें नीचे बिना बुझाया हुआ चूना रखकर उस चूने के ऊपर शुद्ध हड़ताल रखकर ऊपर फिर बिना बुझाया चूना रख दें। उसके पश्चात् उस खरल पर लोहे का ढक्कन लगाकप उस पर आधा मन वजन का पत्थर रख दें और फिर उसे भट्टी पर चढ़ावें। इसे खल्व सुधा यन्त्र कहते हैं।

हड़ताल भस्म की दूसरी विधि—एक मिट्टी की हाण्डी में जौकुट किया हुआ नमक पाँच सेर भर दें और उस नमक के ऊपर एक सेर अपामार्ग की राख दबाकर भर दें। उस राख पर एक तोला शुद्ध हड़ताल को घीगुवार के रस में घोटकर उसकी टिकड़ी बनाकर छाया में सुखाकर रख दें और उस टिकड़ी पर एक सेर अपामार्ग की राख और दवा दें तथा उस राख पर फिर पाँच सेर नमक भरकर दबा दें। इस मिट्टी की हाण्डी को चूल्हे पर चढ़ाकर हलकी आँच से गरम करना चाहिए। जब वह नमक इतना गरम हो जाय कि उस पर अनाज के दाने डालते ही सिक जाँय तब उस हाण्डी को उतारकर ठण्डी करके करके हड़ताल की भस्म को निकाल लेना चाहिए।

यह हड़ताल भस्म श्वास, खाँसी, क्षय, पित्त, वातरक्त, दद्रु, पामा, व्रण और कुष्ठरोग में लाभ पहुँचाती है।

अनुपान—हड़ताल भस्म को सब प्रकार के रक्त विकारों में अम्बिया हलदी के साथ, अपस्मार रोग में वच्छनाग और जीरे के साथ, जलोदर रोग में समुद्र फल के साथ तथा भगन्दर रोग, फिरंगोपदंश, विसर्प, मण्डल कुष्ठ, कण्डू, पामा और विस्फोटक में देवदाली के रस के साथ देना चाहिए।

मात्रा—हड़ताल भस्म की साधारण मात्रा १ रत्ती की है। इसके सेवन के समय अगर खारे, खट्टे और कड़वे पदार्थ नहीं खाये जाँय तो विशेष लाभ करती है।

हलदी

नाम—संस्कृत—हरिद्रा, पीता, युवती, हेमरागिणी, कांचनी, मेहघ्नी, गौरी इत्यादि। हिन्दी—हलदी। बङ्गला—हलदी, पीतरास। गुजराती—हलदर। मराठी—हलद। पञ्जाब—हलदर। अरबी—कुरकम। पारसी—दारजार्दी। तामील—मंजल। तैलगू—पम्पी। उर्दू—दीहल। अंग्रेजी—Turmeric (टर्मेरिक)। लेटिन—Curcuma Longa (करक्यूमा लोंगा)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्णन—हलदी के पौधे छोटे, कोमल और वर्षजीवी होते हैं। इसके पत्ते बहुत बड़े-बड़े होते हैं। इस वृक्ष की जड़ों में जमीन के अन्दर हलदी की गठानें लगती हैं। ये गठानें पीले रंग की होती हैं। हलदी मसाले के तौर पर सारे भारतवर्ष में उपयोग में ली जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हलदी चरपरी, कड़वी, सौन्दर्यवर्द्धक, उष्ण, रूखी, शोधक और स्त्रियों के लिए भूषण है। यह कफ, वात, रुधिर दोष, कोढ़, खुजली, प्रमेह, त्वचा के दोष, घाव, सूजन, पाण्डुरोग, कृमि, विष, पीनस, अरुचि, पित्त और अपचन को दूर करनेवाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से हलदी की गठानें कड़वी, शान्तिदायक, फोड़े को पकानेवाली और मूत्रल होती हैं। ये यकृत की विकृति तथा पीलिया रोग में लाभ पहुँचाती हैं।

डा० देसाई के मत से जिन रोगों में श्लेष्म त्वचा से कफ अधिक मात्रा में निकलने लगता है, जैसे गले के द्वारा अधिक मात्रा में कफ का गिरना, नाक से सेड़ा गिरना, तथा प्रमेह, प्रदर इत्यादि रोगों में हलदी अच्छा काम देती है। हलदी श्लेष्मत्वचा में रूक्षता उत्पन्न करके कफ का पैदा होना कम कर देती है। सरदी के अन्दर जैसे वच फायदा पहुँचाती है वैसे ही हलदी भी पहुंचाती है। सरदी लग जाने पर हलदी की धूनी दी जाती है और हलदी को दूध में औटा कर गुड़ मिलाकर पिलाया भी जाता है। इसके लेने से नाक के द्वारा सरदी बहकर मस्तक का भार हलका हो जाता है।

सुजाक रोग में जब पेशाब गाढ़ा, वेदनायुक्त, बार-बार और थोड़ा-थोड़ा होने लगता है तब हलदी और आँवले का काढ़ा बहुत लाभ पहुंचाता है। इस काढ़े से दस्त साफ होता है, पेशाब की जलन कम होती है, पेशाब थोड़ा-थोड़ा होना बन्द होकर साफ होने लग जाता है। प्रदर रोग में हलदी को गूगल के साथ अथवा रसोत के साथ देते हैं।

आँखों के दुखने या आने पर १। तोला हलदी को १० औंस पानी में औटाकर कपड़े में छानकर आँखों में टपकाते हैं और उसमें कपड़े को तर करके आँखों पर रखते हैं। इससे आँखों में ठण्ढाई पैदा होती है, वेदना शान्त होती है और आँखों से कीचड़ का बहना कम हो जाता है। नेत्राभिष्यन्द रोग में हलदी एक उत्तम ओषधि है। कान के बहने की हालत में हलदी और फिटकरी को मिलाकर कान में टपकाते हैं।

हलदी के अन्दर वातनाशक धर्म भी किसी कदर रहता है, इसलिए सर्दी से होनेवाली अङ्गों की वेदना, दस्तों की वजह से होनेवाले जोड़ों के दर्द और मस्तकशूल में हलदी खाने और लगाने के काम में आती है। बवासीर के सूजे हुए मस्सों पर हल्दी घीगुवार के गूदा में मिलाकर लगाई जाती है। भूतोन्माद में इसकी धूनी दी जाती है।

चर्मरोगों में हलदी एक बहुत उपयोगी वस्तु है। इन रोगों में इसको आँवले के साथ देना विशेष उपयोगी होता है। हलदी को मक्खन में मिलाकर त्वचा पर लगाने से त्वचा मुलायम होती है और बहुत से चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। हलदी के उबटन से देह का सौन्दर्य भी निखर जाता है, इसलिए विवाह के समय हलदी का उबटन इस देश में शास्त्रसम्मत माना गया है। व्रणों के ऊपर हलदी को पीसकर लगाने से व्रण का संकोचन होकर वह शीघ्र भर जाता है। इधर-उधर से आकस्मिक गिर जाने से अथवा और किसी दूसरी घटना से शरीर को भीतरी चोट पहुँची हो, अथवा रक्त का जमाव हो गया हो तो हलदी को दानेदार शक्कर के साथ देने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है और रक्तसंचालनक्रिया दुरुस्त हो जाती है। हलदी का लेप चोट और मोच के ऊपर करने से लाभ पहुँचाता है।

हलदी में दीपन और ग्राही धर्म भी रहता है। इसलिए दस्त, अतिसार, संग्रहणी इत्यादि रोगों में भी यह उपयोगी होती है। चक्कर आने की हालत में हलदी का लेप सिर पर करना चाहिए।

प्रसूतिकाल में तथा बच्चा जब तक छोटा रहे तब तक प्रसूता को हलदी देना उत्तम होता है क्योंकि इससे दूध की शुद्धि होती है और गर्भाशय की उत्तेजना मिलती है।

हलदी की गठानें बाह्य और अन्तरङ्ग दोनों ही दृष्टियों से उत्तेजक धर्म रखती हैं। इनका लेप त्वचा को उत्तेजित कर वेदना को शान्त करता है और इनका भीतरी प्रयोग रक्त की विकृति को दूर करता है। इसका बाह्य प्रयोग चोट, मोच, जोंक का डङ्क इत्यादि पर किया जाता है। इसीलिए भारतवर्ष में हर एक लेप और पुलटिस में हलदी मिलाने का रिवाज है। इसका ताजा रस कृमिनाशक होता है। इसकी गठानों का काढ़ा जुकाम और ऐसे नेत्र शुक्ल रोग में जिसमें आँख से पीब निकलता हो, उपयोगी होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यूनानी हकीम इसको पीला रङ्ग होने की वजह से यकृत के रोग और पीलिया में उपयोग में लेते हैं।

हलदी की गठान का काढ़ा, ऐसे नेत्राभिष्यन्द रोग में जिसमें पीब बहता हो, बहुत उपयोगी चीज है। इससे वेदना शीघ्र शान्त हो जाती है। जुकाम के अन्दर हलदी की गठानों को जलाकर उनका धुआँ नाक की राह ग्रहण करने से नाक खूब बहने लगता है और जुकाम का सब विकार नाक की राह निकल जाता है और मस्तिष्क हलका हो जाता है।

बेडन पावल के मतानुसार हलदी पार्यायिक ज्वर और जलोदर रोग में उपयोगी होती है। इसके अन्दर काफी तादाद में उड़नशील तेल और स्टार्च रहता है जो कि उत्तेजक, सुगन्धित और पौष्टिक होता है।

इसकी गठान को भूनकर फिर उसका चूर्ण करके ब्रोङ्काइटीज में देते हैं और इसका धुआँ हिस्टीरियाजनित मूर्च्छा को दूर करने के लिए दिया जाता है। हलदी का चूर्ण करके उसको चिलम में रखकर उसका धूम्रपान करने से बिच्छू के विष की वेदना दूर होती है।

हलदी और फिटकरी को १ और २० के परिमाण में मिलाकर नली के द्वारा कान में फूँकने से प्राचीन कर्णस्राव रोग आराम होता है।

हलदी के फूलों का लेप दाद और दूसरे चर्मरोगों में लाभ पहुँचाता है। सुजाक के इलाज में हलदी के फूल उपयोगी होते हैं।

आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान में हलदी बहुत प्राचीन काल से उपयोग में ली जाती है। सभी प्रकार के प्रमेहों में विशेषकर कफजन्य प्रमेहों में यह एक उत्तम वस्तु मानी जाती है। इसी से यहाँ के निघण्टुओं में इसका एक नाम 'मेहघ्नी' भी रक्खा गया है। महर्षि सुश्रुत ने भी इसको प्रमेह के रोग में उपयोगी माना है। आजकल के देशी चिकित्सक भी हलदी के चूर्ण को आँवले के रस में मिलाकर प्रमेह के रोग में देते हैं। जिससे कितनी ही प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

एक तोला हलदी के चूर्ण को आठ तोला गोमूत्र के साथ पीने से खसरा तथा अण्डकोष के ऊपर की खुजली मिट जाती है। इसी चूर्ण को गुड़ के साथ खाकर ऊपर से गोमूत्र पीने से दाद और श्लीपद का रोग कुछ दिनों में अच्छा हो जाता है। जुकाम के प्रारम्भ में रात के समय नाक के द्वारा हलदी का धुवाँ ग्रहण करके अगर कुछ समय तक पानी न पिया जाय तो चाहे जैसा कठिन जुकाम अच्छा हो जाता है।

हलदी और अर्बुदरोग—जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि अर्बुद अथवा रसोली का रोग एक ऐसा रोग है जो बिना आपरेशन या शस्त्र-क्रिया के नहीं मिटता। लेकिन हमको एक यतिराज ने ऐसी विधि बतलाई है जिससे बिना शस्त्र-क्रिया के यह रोग आराम हो जाता है। यह विधि इस प्रकार है:—

'हलदी की सूखी गठानें लेकर अंगारे पर रखकर जला लेना चाहिए और उनकी भस्म को एक मजबूत कागवाली शीशी में भर लेना चाहिए। फिर जब जरूरत पड़े तब उसे थोड़ी लेकर पानी में मिलाकर लेप के तुल्य गाढ़ी-गाढ़ी बनाकर अर्बुद के मध्य भाग में एक पैसे बराबर जगह में लगा देना चाहिए। तीन-चार दिन तक प्रतिदिन इस भस्म को तीन-चार बार लगाने से उस जगह का मांस नष्ट होकर एक अंगुल गहरा भाव पड़ जावेगा। यह घाव पड़ जाने पर उस अर्बुद को चारों ओर से हाथ से दबाकर उसका पीब तथा मेद का भाग इस घाव के रास्ते निकाल देना चाहिए। इस पीब के निकल जाने से अर्बुद बैठने लगेगा। फिर भी उस घाव को कायम रखना चाहिए, अगर वह भरने लगे तो उस पर हलदी की भस्म का लेप फिर करना चाहिए। यह लेप अर्बुद के अन्दर रहे हुए शेष दोषों को पीब का रूप देकर जल्दी निकालने का कार्य करता है। इस प्रकार अर्बुद के सब दोषों के निकल जाने पर कोई मरहम वगैरह लगाकर उस घाव को भर देनां चाहिए। इस पद्धति से अर्बुद के सिवा कारबङ्कल तथा दूसरे सांघातिक फोड़ों में भी बहुत लाभ होता है।'

इसी प्रकार उपर्युक्त ग्रन्थ के लेखक ने हलदी के द्वारा अग्नि दग्ध करके उपदंश के विष को उस घाव द्वारा निकाल देने का भी एक तरीका लिखा है मगर बह तरीका इतना वेदनापूर्ण और खतरनाक है कि उसमें जरा सी भूल से भी अनिष्ट होने की सम्भावना है इसलिए हम उसे यहाँ देना उचित नहीं समझते।

मतलब यह कि हलदी हमारे घरों में रात दिन उपयोग में आनेवाली वस्तु होने पर भी चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से बड़े महत्त्व की वस्तु है। इसकी मात्रा दो माशे तक की है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हस्तिशुण्डि

नाम—संस्कृत—हस्तिशुण्डी, श्रीहस्तिनी, भुरुण्डी। हिन्दी—हस्तिशुण्डि, हाथी खुर, सिरियारी। बंगला—हाथीसुरा। बम्बई—भुरुण्डी, सूर्यकमल। गुजराती—हाथी सुण्डा। मराठी-भुरुण्डी। तामिल—तेलमनि। लेटिन—Heliotropium Indicum (हेलिग्रोट्रोपियम इण्डिकम)।

वर्णन—यह एक प्रकार का वर्षजीवी क्षुप होता है। इसका पौधा हाथ-डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। यह सारा क्षुप एक प्रकार के रुएँ से आच्छादित रहता है। इसकी डालियां बहुत लगती हैं जो हाथ की उङ्गली के समान मोटी होती हैं। इसके पत्ते हृदयाकृति और लम्बे डंठलवाले होते हैं। डालियों के सिरे पर सफेद फूलों के गुच्छे आते हैं। इस सारे पौधे में धतूरे के समान गन्ध आती है। इसका जायका कुछ कड़वा होता है। इसके फूलों की मंजरी बिलकुल हाथी की सूण्ड के समान होती है। इसीसे इसे हस्तिशुण्डी कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, संकोचक और हठीले ज्वर को दूर करने वाली होती है।

यह वनस्पति ग्राही, कड़वी, वेदना नाशक, व्रणशोधक और व्रणरोपक होती है। व्रणशोथ, व्रण और जखमों पर इसके पत्तों को बाँधने से लाभ होता है। त्रासदायक विद्रधि और नेत्राभिष्यन्द रोग में आंखों की पलकें सूज जाने पर इसका स्वरस लगाया जाता है। व्रण और गले की गठानों पर इसका रस अरण्डी के तेल में मिलाकर लगाया जाता है। टान्सिल की सूजन में इसके काढ़े से कुल्ले किये जाते हैं और इसका काढ़ा पिलाया जाता है। ज्वर में इसके पत्ते लाभदायक होते हैं।

इसकी जड़ें बिच्छू और सर्प के विष पर लगाने के काम में ली जाती हैं। इसके पत्तों का रस अरण्डी के तेल में मिलाकर लगाने से बिच्छू के विष की वेदना कम हो जाती है। पागल कुत्ते के विष में भी यह लाभ पहुँचाती है। इसके पत्तों की लुगदी से सिद्ध किया हुआ तेल गलित कुष्ठ में उपयोगी होता है।

इस वनस्पति के पत्ते संसार के बहुत से भागों में घावपूरक गुण के कारण और टूटी हड्डी को जोड़ने के गुण के कारण बहुत आदर की निगाह से देखे जाते हैं। ये पत्ते अर्बुद, विद्रधि और प्रदाह में लगाने के काम में लिये जाते हैं। इनके अन्दर स्निग्ध-गुण बिशेष तादाद में पाया जाता है। कुछ लोगों के मत से इस वनस्पति में मूत्र-निस्सारक गुण भी रहता है।

पटना में इस वनस्पति के पत्ते दो माशे से लेकर नौ माशे तक की मात्रा में ज्वर को दूर करने के लिए उपयोग में लिये जाते हैं।

कम्बोडिया में इसके पत्तों का काढ़ा ज्वर को दूर करने के लिए और इसके फूल मासिक धर्म को नियमित करने के उपयोग में लिये जाते हैं। इसके फूल छोटी मात्रा में मासिक धर्म को नियमित करते हैं और बड़ी मात्रा में गर्भस्रावक होते हैं। इसके पत्ते और जड़ों का लेप बनाकर दाद और गठिया पर लगाने के काम में लिया जाता है।

गले के छालों और घावों को दूर करने के लिए यह एक उत्तम ओषधि है। इसके पत्ते सुजाक और अग्नि-विसर्प रोग की चिकित्सा में काम में लिये जाते हैं।

डायमाक के मतानुसार यह वनस्पति चेहरे की फुन्सियों पर लगाने के काम में ली जाती है। प्रदाहयुक्त चक्षुवेदना में भी यह उपयोगी है। इस ओषधि की गले के रोगों में बहुत प्रशंसा है। कण्ठनाली के प्रदाह और टॉन्सिल्स की सूजन में यह बहुत उपयोगी बस्तु है। इन रोगों में इसके पत्तों और फूलों के काढे से कुल्ले किये जाते हैं और एक घण्टे के अन्तर से इसके पत्तों और फूलों का काढ़ा एक वाइन ग्लास की मात्रा में पिलाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मत से यह वनस्पति दुष्ट फोड़ों और जहरीले कीड़ों तथा सर्पविष के उपचार में काम में ली जाती है। इसमें टेनिन, आर्गेनिक एसिड और कुछ उपक्षार रहते हैं।

मात्रा—इसके पत्तों की मात्रा आधे ड्राम तक होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हस्तिकन्द

नाम—संस्कृत—हस्तिकन्द, हस्तिपत्र, कुष्ठहन्ता, नागकन्द, गजकन्द इत्यादि।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हस्तिकन्द चरपरा, गरम, कफ-वातनाशक तथा त्वचा के विकार, महाकुष्ठ, विष और विसर्प रोग को नष्ट करता है।

हस्तिकन्द गरम, चरपरा, मधुर, भारी तथा सूजन, कफ, रुधिरविकार, वात, कोढ़, विसर्प और त्वचा के रोगों को दूर करता है।

हंसपदी

नाम—संस्कृत-हंसपदी, करिमाता, त्रिपादी, मधुश्रवा, गोधापदी इत्यादि। हिन्दी-हंसपदी, हंसपगी, कालीझांठ, काली झांप। गुजराती—हंसपादी, मुबारक, हंसराज। मराठी—हंसराज, राजहंस, घोड़खुरी। बंगला—कालीझांट, गोयाले लता। काठियावाड़—कालो हंसराज। अङ्गरेजी—The Maidens Hair Fern (दी मेडन्स हेअर फर्न)। लेटिन—Adiantam Lunulatum (एडिएण्टम् लुनुलेटम)।

वर्णन—हंसपदी का क्षुप एक फीट से लेकर दो फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बहुत छोटे २ और पक्षियों के पंजे की तरह होते हैं। इनके डंठल काले, चिकने और चमकदार बालों के समान पतले होते हैं। यह वनस्पति जलाशयों के किनारों पर शीतल स्थानों में बहुत होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हंसपदी भारी, शीतल, गरम, रसायन तथा रुधिरविकार, विष, व्रण, विसर्प, दाह, अतिसार, भूतबाधा, अग्निरोहिणी रोग, अपस्मार और भ्रम को हरनेवाली होती है।

इसकी जड़ मूत्रकृच्छ्र रोग तथा श्लीपद की वजह से होनेवाले ज्वर में उपयोगी होती है। इसके पत्ते गुजरात में रतवा नामक चर्मरोग पर और फोड़े-फुन्सियों पर पीसकर लगाये जाते हैं। इसके सूखे पत्तों का शरबत बनाकर खाँसी, रक्तविकार इत्यादि रोगों में पिलाया जाता है।

डा० देसाई के मत से हंसपदी कड़वी, कुछ संकोचक, खाँसी को दूर करनेवाली और कफनाशक होती है। इसमें कुछ मूत्रल धर्म भी रहता है। बच्चों के लिए यह बहुत उपयोगी वस्तु है। इसके पंचांग का शरबत बच्चों के रोगों में बहुत दिया जाता है। बच्चों की खाँसी में हंसपदी का शरबत दिया जाता है। मात्रा अधिक होने पर हंसपदी वामक धर्म दिखलाती है फिर भी कफ को वह वमन के द्वारा निकाल देती है जिससे खाँसी में राहत पहुँचाती है।

हंसराज

नाम—हिन्दी—हंसराज, मुबारक, पुरुष। काश्मीर—दमतुली। अरबी—शेरुलजिन। फारसी—सिरसिया पेशानी। लेटिन—Adantium Capallis (एडेन्टियम केपेलिस।

वर्णन—यह भी उपर्युक्त हंसपदी के वर्ग की ही वनस्पति होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति ज्वर, जुकाम और खाँसी में लाभदायक होती है। पंजाब में इसके पत्तों को काली मिरच के साथ ज्वर को दूर करने के लिए देते हैं। जुकाम के अन्दर इसके पत्तों को शहद में मिलाकर देने से लाभ होता है।

मैक्सिको में इसके पौधे की चाय बनाकर कॉलिक उदरशूल में देते हैं। इस चाय के सेवन से स्त्रियों को होनेवाली मासिक धर्म की रुकावट भी मिट जाती है।

यह वनस्पति लुआबदार, कफनिस्सारक और छाती के रोगों में हितकारक होती है। कफ रोगों को दूर करने के लिए सारे यूरोप में इस वनस्पति की बड़ी प्रशंसा है। एक ऋतुस्राव-नियामक औषधि की तरह भी इसका उपयोग किया जाता है।

फ्रान्स में इस वनस्पति से एक प्रकार का शरबत बनाया जाता है जो खाँसी, गले की खराबी और वायुनलियों की खराबी में दिया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिंगोट

नाम—संस्कृत—इंगुदी, इंगुद, अंगारवृक्ष, तिक्तक, विषकंटक इत्यादि। हिन्दी—हिंगोट, हिंगन, गोन्दी। बंगला—हिंगोन। मराठी—हिंगण। बम्बई—हिंगनबेट। गुजराती—इंगोरिया। अरबी—हिलेलजे। तामिल—नञ्जुनदान। उर्दू—हिंगोट। लेटिन—Balanites Aegyptiaca (बेलेरिंटस इजिप्टका)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसकी ऊँचाई दस से लेकर बीस फुट तक की होती है। इसकी शाखाओं के सिरों पर बड़े लम्बे और तीक्ष्ण कांटे होते हैं। इन काँटों के ऊपर पत्ते और फूल आते हैं। इसके फूल पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। इनमें धीमी २ खुशबू आती है। इसके फल नीम्बू के बराबर तथा बड़े कठोर होते हैं। फल के अन्दर गुठली या बीज होता है। इस बीज में तेल रहता है। यह वृक्ष जिन प्रान्तों में कम वर्षा होती है वहाँ अधिक पैदा होता है। विशेष रूप से गुजरात और काठियावाड़ में यह बहुत होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हिंगोट मदगन्ध युक्त, चरपरा, हलका, कड़वा, गरम, झागदार, रसायन तथा कृमि, वात, शूल, श्वेतकुष्ठ, व्रण, कफ, ग्रहपीड़ा और भूतबाधा को दूर करता है। इसके फूल मधुर, स्निग्ध, गरम, कड़वे तथा वात और कफ को नष्ट करनेवाले होते हैं।

भावप्रकाश के मत से हिंगोट गरम, कड़वा, पचने में चरपरा तथा कुष्ठ, भूतबाधा, ग्रहबाधा, व्रण, विष, कृमि, श्वेत कुष्ठ और शूल को निर्मूल करनेवाला है।

हिंगोट के फल की मगज को जल के साथ पीसकर मुखपर लेप करने से मुख की कान्ति बढ़ती है।

यूनानी मत से इसका फल विस्फोटक, श्वेत कुष्ठ और दूसरे चर्म रोगों में लाभ पहुँचाता है।

हिंगोट में कृमिनाशक, कफनाशक, कुष्ठनाशक और स्रंसन इतने धर्म रहते हैं। प्राचीन कफ रोगों में इसके बीज की मगज को देने से बहुत लाभ होता है। इस कार्य के लिए इसको बदाम की मगज के साथ पीसकर थोड़े पानी में घोलकर शक्कर मिलाकर देना चाहिए। इससे कफ पतला होकर जल्दी निकल जाता है। पेशाब और दस्त साफ होता है और थकावट नहीं आती। श्वासनलिका की नवीन सूजन में भी इस औषधि को दिया जा सकता है। इसको बड़ी मात्रा में देने से जोरदार विरेचन होता है। इसलिए जलोदर के अन्दर भी इस औषधि का उपयोग किया जाता है मगर विरेचन के लिए इस वनस्पति को उपयोग में लेना ठीक नहीं है क्योंकि इसके विरेचन से आँतों में दाह पैदा होती है। इसके बीजों का तेल जखमों पर और अग्नि से जले हुए स्थान पर लगाया जाता है।

इस वृक्ष की छाल, कच्चा फल और पत्ते चरपरे, कड़वे और विरेचक होते हैं। इनमें कृमिनाशक तत्त्व भी रहते हैं। इसके बीज कफ रोगों में दिये जाते हैं। कॉलिक शूल में भी ये लाभदायक माने जाते हैं।

उपयोग—पेट के कृमि—इसके वृक्ष की छाल के चूर्ण की फक्की देने से पेट के कृमि मरते हैं।

सूखी खाँसी—इसके बीज की मगज को एक रत्ती से पन्द्रह रत्ती तक की मात्रा में देने से सूखी खांसी मिटती है।

उदर शूल—इसके आधे फल की मगज देने से उदर शूल मिटता है।

मोतियाबिन्द—हिङ्गोट की मगज दो भाग और अफीम एक भाग इन दोनों को मिलाकर अंजन करने से आँख के मोतियाबिन्द में लाभ होता है। हिङ्गोट की मगज को पानी में घिसकर अंजन करने से आँख की ज्योति बढ़ती है।

रुधिर विकार—हिङ्गोट के वृक्ष की छाल का चूर्ण ६ माशे से एक तोले तक की मात्रा में पन्द्रह दिन तक रोज पानी के साथ लेने से कुष्ठ और रुधिर विकार में लाभ होता है। मगर इस औषधि को लेते समय तेल, खटाई, नमक और वातवर्द्धक पदार्थों का सेवन बन्द कर देना चाहिए।

हिंगोट की मगज का तेल स्निग्ध, शीतल और मीठा होता है। यह कान्ति, बल, धातु, केश, कफ और नेत्रों की ज्योति को बढ़ाता तथा पित्त को नष्ट करता है।

मात्रा—इसके फल की मगज की मात्रा कफ को नष्ट करने के लिए एक रत्ती से पाँच रत्ती तक है। १० रत्ती से ३० रत्ती की मात्रा में यह स्रंसन होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिरनपदी

नाम—संस्कृत—भद्रबला, प्रसारणी। हिन्दी—हिरनपदी, प्रसारणी, बेरी। गुजराती—नेरी, नेरीवेल, बेलड़ी। काठियावाड़—हरनपगो, वेलड़ी। मराठी—हरनपग, चाँदवेल। बङ्गला—गन्धभादली। लेटिन—Cuo-vol Vulus Arvensis (कनवोल वालस अरवेन्सिस)।

वर्णन—यह एक लता होती है। इसकी बेल पतली होती है। जाड़े के दिनों में यह पैदा होती है। इसमें दूध के समान रस भरा रहता है। इसके पत्ते लम्बे और हिरन के खुर के आकार के होते हैं। इसके फूल सफेद, गुलाबी या बैंगनी छायावाले होते हैं। इसका फल गोलाई लिये हुए, नोकदार और चार बीजवाला होता है। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ विरेचक होती है। इसके पत्तों की तरकारी बनाई जाती है और ये पौष्टिक माने जाते हैं। इसके पत्तों को पीसकर फोड़े-फुन्सियों पर बाँधते हैं। पंजाब और सिन्ध में विरेचन के लिए अंग्रेजी दवा जेलप के बदले में इसकी जड़ का उपयोग किया जाता है।

हिरू सियाह

नाम—हिन्दी—हिरू सियाह, महाबी। पंजाब—चतरीवाल, दूदल, कुल्फाडोडक। अंग्रेजी—Cat's Milk (केट्स मिल्क), Churn Staff (चूर्न स्टॉफ)। लेटिन—Euphorbia Helioseopia (इफोबिया हेलिओसेपिया)।

वर्णन—यह थूहर के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसके सब अङ्गों में दूधिया रस भरा रहता है। यह वनस्पति पंजाब, पश्चिमी हिमालय और नीलगिरि में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति मूत्रविरेचक होती है। इसका रस त्वचा पर होनेवाली मसों को दूर करने के लिए लगाया जाता है। इसका दूधिया रस फफोलों पर लगाने के काम में लिया जाता है और इसके बीज भुनी हुई काली मिरचों के साथ हैजे की बीमारी में दिये जाते हैं।

इसका रस एक लेप की तरह संधिवात और स्नायुशूल पर लेप करने के काम में लिया जाता है और इसकी जड़ एक कृमिनाशक वस्तु की तरह दी जाती है।

हींग

नाम—संस्कृत—हिंगु, सहस्रवेधी, उग्रगन्ध, शूलनाशक, जन्तुनाशक। हिन्दी—हींग। गुजराती—हींग। बंगाल—हींग। मराठी—हिंग। कश्मीर—अंजुदान। फारसी -अङ्गुझा, अङ्गादाना, अंगुझे। उर्दू—अङ्गादाना, हींग। तामिल—पेरूङ्गायम। अरबी—हिलतीत। अङ्गरेजी—Asafoetida (आसाफोटिडा)। लेटिन—Ferulo Narthex (फेरुला नार्देक्स) Narthex Asafoetida (नार्देक्स आसाफोटिडा)।

वर्णन—हींग एक प्रकार के वृक्ष का दूध होता है। यह दूध जमकर गोंद की शकल में हो जाता है। इसके वृक्ष ईरान में बहुत होते हैं और यह ईरान से ही भारत में बिकने को आती है। जो हींग कुछ कालापन लिये भूरे रंग की, उग्र गन्धयुक्त, अत्यन्त तीक्ष्ण स्वादवाली और त्वचा पर लगाने से जलन उत्पन्न करनेवाली होती है वही उत्तम होती है। उसे हीरा हींग कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हींग पित्तजनक, गरम, हृदय को हितकारी, कड़वी, सारक, चरपरी, हलकी, तीक्ष्ण, रुचिकारक, पाचक, अग्निदीपक, स्निग्ध, मलस्तम्भक, तथा श्वास, खाँसी, कफ, आनाह, आफरा, गुल्म, शूल, हृदय रोग, अजीर्ण, कृमि और उदर रोग को नष्ट करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से हींग के वृक्ष की डालियाँ चरपरी, मसाले के काम में आनेवाली, मस्तिष्क तथा यकृत को शक्ति देनेवाली, ऋतुस्रावनियामक, सूजननाशक और पक्षाघात में लाभदायक है। इसका

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गोंद अथवा हींग बहुत तीक्ष्ण स्वादवाली और उग्र गन्धवाली होती है। यह कृमिनाशक, ऋतुस्रावनियामक, बलवर्द्धक और अर्द्धाङ्गवायु, सिर के चक्कर, बहरापन, बच्चों का श्वास-कष्ट, संधिवात, नेत्ररोग, सूखी खाँसी, गले के रोग तथा तिल्ली और यकृत के रोगों को दूर करनेवाली होती है। यह स्मरण शक्ति को बढ़ाती है।

डा० देसाई के मत से हींग दीपन, पाचनाआमाशय और आंतों के लिए उत्तेजक, वायुनाशक, आनुलोमिक, कृमिघ्न, भेदक, कफनाशक, कफ की दुर्गन्ध को दूर करनेवाली, मज्जातन्तुओं के लिए तथा गर्भाशय के लिए जोरदार उत्तेजक संकोच-विकास प्रतिबन्धक और विषमज्वर को नष्ट करनेवाली होती है। इसके अन्दर रहनेवाला उड़नशील तेल, श्वासनलिका, त्वचा और मूत्रपिण्ड के द्वारा बाहर निकलता है। बाहर निकलते समय जिस मार्ग से यह बाहर निकलता है उस मार्ग को उत्तेजना देता है। इसका कफनिस्सारक गुण प्याज के समान होता है। इसके लेने से श्वासनलिका में जमा हुआ कफ पतला होता है, उसकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और उसमें रहनेवाले रोगजन्तुओं का नाश होता है। श्वासोच्छ्वास के केन्द्र स्थान की क्रिया कुछ धीमी हो जाती है जिससे बिना कारण आनेवाली खांसी कम हो जाती है। ज्ञानतन्तु अथवा कर्मतुन्तओं के चिड़चिड़े होने से, अथवा मज्जातन्तुओं के केन्द्र स्थान की कमजोरी की वजह से मस्तिष्क पर बाह्य घटनाओं का असर मामूली से अधिक होने लगता है। जिससे मनुष्य द्वारा भूल और भूलभरे काम होने लगते हैं और उसकी दुःखी और गमगीन रहने की आदत पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में हींग का प्रयोग करने से मज्जातन्तुओं की यह विक्रिया बन्द होकर वे व्यवस्थित रूप से काम करने लगती हैं। इसी से हींग मज्जातन्तुओं के लिए बलदायक और संकोच-विकास प्रतिबन्धक मानी जाती है। इससे आमाशय और आंतों की पेशियों को उत्तेजना मिलती है जिससे दस्त साफ होता है।

फुफ्फुस के रोगों में हींग बहुत गुणकारी होती है। प्रौढ़ मनुष्यों की श्वासनलिका की पुरानी सूजन, दमा, कुक्कुर खाँसी और छोटे बच्चों की श्वासनलिका की सूजन तथा फुफ्फुस के रोग होने के पश्चात् होनेवाली सूखी खांसी में हींग देने का बहुत रिवाज है। इसको देने से घबराहट की कमी होती है। कफ पतला होता है और कफ का अधिक उत्पन्न होना कम हो जाता है। फुफ्फुस के रोगो में हींग को पानी में घोंट कर देते हैं।

पेट का फूलना, उदरशूल, कब्जियत, आमाशय और आंतों की शिथिलता, अपचन और कृमिरोग में हींग बहुत गुणकारी होती है, इन रोगों में हींग को अजवायन के साथ अथवा एलुवे के साथ देते हैं। आँतों के रोग में तथा कृमि रोग में हींग के पानी का एनिमा देना चाहिए।

गृध्रसी, अर्दित, पक्षाघात, आक्षेप इत्यादि वात रोगों में हींग को देने से बहुत लाभ होता है। मलेरिया ज्वर में भी यह एक उपयोगी वस्तु है। ज्वर के अन्दर सन्निपात का लक्षण दिखाई देने पर 'हींगकपूर-बटी' देना चाहिए। अगर रोगी में गोली को निगलने की सामर्थ्य न हो तो गोली को अदरक के रस में घिसकर उसकी जबान पर लगा देना चाहिए। इससे नाड़ी की गति में सुधार होता है। हाथ-पांवों की कम्पन मिटती है और रोगी का अण्डबण्ड बकना, हाथ-पाँव फेंकना, कपड़े फाड़ना आदि उपद्रव बन्द हो जाते हैं। इस गोली के साथ कस्तूरी देने से और भी अधिक लाभ होता है।

हृदय-रोगों में भी हींग एक उत्तम वस्तु है। छाती की धड़कन, हृदय का शूल, घबराहट, चक्कर आना इत्यादि रोगों में तथा हृदयोदर में 'हींगकपूर-वटिका' देने से लाभ होता है।

प्रसूति के समय हींग देने से गर्भाशय का संकोच न होकर विटाल साफ पड़ जाता है, गर्भाशय शुद्ध हो जाता है और मक्कल्ल शूल बन्द हो जाता है।

नारू के ऊपर हींग का लेप करने से और हींग खाने से नारू का कीड़ा मर जाता है। नियमित रूप से हींग खानेवालों को नारू नहीं निकलता, ऐसा कहा जाता है।

मेजर बसु और कीर्तिकर के मत से हींग एक शक्तिशाली आक्षेप-निवारक, कफनिस्सारक, कृमिनाशक, मज्जातन्तुओं को उत्तेजना देनेवाली और हलकी मृदु विरेचक होती है। यह हिस्टीरिया रोग और हिस्टीरिया जनित विकारों में बहुत लाभदायक होती है। इसी प्रकार दमा, हूपिंग कफ, हृदयशूल (Angina Pectoris) तथा कॉलिक शूल में होनेवाले आक्षेप को यह दूर करती है। निमोनिया रोग की स्थिति में हींग का प्रयोग करने से यह अपना आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाती है। बच्चों के ब्रोंकाइटीज में भी इसका उत्तम प्रभाव होता है।

ग्लोबस हिस्टीरिया में—जिसमें कि पेट की तरफ से एक गोला सा उठकर छाती की तरफ बढ़ता है—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हींग को देने से बहुत लाभ होता है। दाद के ऊपर इसका लेप करने से दाद अच्छा हो जाता है। संधिवात में इसके वृक्ष के पत्तों को पिलाने से लाभ होता है।

रावर्ट्स के मत से सीलोन में नारियल के दूध में हींग को उबाल कर साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं और इसको पानी में घोलकर आधे चाय की मात्रा में नाक में टपकाते हैं।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार हींग दूसरी ओषधियों के साथ साँप और बिच्छू के विष में उपयोगी होती है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पविष में निरुपयोगी है। बिच्छू के विष में भी यह बेकार है।

हींग को शुद्ध करने की विधि—आयुर्वेद में हींग को भी शुद्ध करके उपयोग में लेने का विधान है। इसको शुद्ध करने की विधि इस प्रकार है:—लोहे के पात्र में घी के अन्दर हींग को डालकर आग पर रख दें, जब कुछ लाल हो जाय तब उतार कर काम में लें।

बनावटें—हींग १ तोला और कपूर १ तोला इन दोनों चीजों को शहद में घोटकर रत्ती-रत्ती भर की गोलियाँ बनालें। यह 'हींगकपूर-बटी' अनेक रोगों पर काम आती है।

हिंग्वष्टक चूर्ण—सोंठ, मिर्च, पीपर, जीरा, स्याहजीरा, अजमोद, सेंधानमक, कालानमक ये आठों चीजें एक-एक तोला और हींग तीन माशा इन सब चीजों का चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में लेने से सब प्रकार के उदररोग मिटते हैं।

मात्रा—हींग की मात्रा दो रत्ती से ६ रत्ती तक होती है।

हींगड़ा

नाम—हिन्दी—हींगड़ा। ईरान—अंगुझेह इलारि। लेटिन—Ferula Foetida (फेरुला फोटिडा)।

वर्णन—हींगड़ा भी हींग के ही वर्ग के एक वृक्ष का निर्यास होता है। इसमें भी हींग के समान गन्ध आती है। यह भी ईरान से यहाँ आता है मगर हींग की अपेक्षा बहुत हलके दर्जे का होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—मसाले में बहुत से जैनी लोग हींग की जगह हींगड़े का प्रयोग करते हैं मगर ओषधि गुण-धर्म की दृष्टि से हींग की अपेक्षा इसका बहुत कम महत्त्व है।

हिंगुपत्री

नाम—संस्कृत—हिंगुपत्री, कर्बरी, बाष्पका, दारुपत्रिका इत्यादि।

वर्णन—हिंगुपत्री हींग के वृक्ष के पत्तों को कहते हैं, ऐसा कई लोगों का मत है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हिंगुपत्री चरपरी, तीक्ष्ण, कड़वी, गरम, पाचक, रुचिकारक, पथ्य, दीपन, हृदय को हितकारी, सुगन्धित, कसैली तथा कफ, वात, आमदोष, बस्ति की पीड़ा, कब्जियत, बवासीर, गुल्म, प्लीहा, मेद, अपचन और विष को नष्ट करती है।

हलकुसा

नाम—संस्कृत—द्रोणपुष्पी, कुम्भी, रुद्रपुष्पा। हिन्दी—हलकुसा, गुमा। बंगला—हलकुसा। मराठी—गूमा। गुजराती—झीना पानना कुबो। उर्दू—गुमा। लेटिन—Leucas Linifolia (ल्यूकास लिनिफोलिया)।

वर्णन—यह द्रोणपुष्पी या गूमा के वर्ग की एक वनस्पति होती है। अन्तर इतना ही होता है कि इसके पत्ते द्रोणपुष्पी के पत्तों से पतले होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसके पत्ते बदजायका, कफनिस्सारक कृमिनाशक, कामोद्दीपक, शान्तिदायक, मृदु विरेचक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक तथा बवासीर और आँखों के व्रणों में लाभदायक होते हैं।

मध्य भारत के लोगों का विश्वास है कि इसके पत्तों को भूंजकर उनमें नमक मिलाकर खिलाने से वे ज्वर को दूर करने में मदद करते हैं।

लखीमपुर आसाम में इसके पत्ते भूख बढ़ानेवाले माने जाते हैं। इसके पत्तों को केले पत्तों के पत्तों में लपेट कर गरम करते हैं और फिर रोगी को देते हैं। इसका पहला असर यह होता है कि रोगी की रही-सही भूख भी नष्ट हो जाती है मगर दूसरे दिन उसकी भूख एकदम बढ़ जाती है और वह खाने के लिए व्याकुल हो जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हीराबोल

नाम—संस्कृत—बोल, गन्धरस, पिण्ड, रसगन्ध इत्यादि। हिन्दी—बोल, बीजाबोल, हीराबोल। बङ्गला-गन्धरस, बोल, हीराबोल। बम्बई—करम, बन्दर करम। मराठी—हीराबोल। गुजराती—हीराबोल। फारसी—मुर। अरबी—मुरसाफ। इङ्गलिश—Myrha (मायरा)। लेटिन—Balsamodendron Myrrha (बालसमोडेण्ड्रोन मायरा)।

वर्णन—यह एक वृक्ष का गोंद होता है इसका रंग ललाई लिये हुए पीले रंग का और तेलिया होता है। यह चीठा, सुगन्धित और कुछ कड़वा होता है। बम्बई में इसकी उत्तम जाति को करस और हलकी जाति को म्हैसा बोल कहते हैं। इस हीराबोल में भी दूसरी जाति के गोंद की मिलावट की जाती है। असली बोल को पहचानने के लिए उसको तेजाब में डालने से बैगनी और किरमिची रंग पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से बोल चरपरा, कड़वा, कसैला, गरम, पाचक, मेधाजनक, अग्निदीपक, गर्भाशय-शोधक और सुगन्धित होता है तथा रुधिरदोष, कफ, पित्त, त्रिदोष, प्रदर, पथरी, प्रमेह, योनिशूल, ज्वर, कुष्ठ, अपस्मार, रक्तातिसार, पसीना, ग्रहबाधा और पुरुषत्व का नाश करता है।

हीराबोल वातनाशक, उत्तेजक, व्रणशोधक, व्रणरोपक, श्लेष्मल त्वचा के लिए उत्तेजक, संग्राहक, कफ-निस्सारक, रक्त में श्वेतकणों को बढ़ानेवाला, दीपन, कोष्ठ वायु को शमन करनेवाला, पसीना लानेवाला, मूत्रल और आर्त्तव-प्रवर्त्तक होता है। इसकी मासिक धर्म को जारी करने की क्रिया प्रत्यक्ष और जोरदार नहीं होती है। इसका लेप उत्तेजक और सौम्य होता है, इसलिए व्रणों के ऊपर इसका लेप किया जाता है। इसको मुँह में रखने से भी यही परिणाम होता है इसलिए मुखपाक, गले की शिथिलता, मसूड़े की सूजन और जीभ पर चट्ठे तथा चीरे पड़ने की हालत में इसको मुँह में रखने से अथवा इसके अर्क से कुल्ले करने से बहुत लाभ होता है। रोहिणी रोग अथवा डिफ्थीरिया में भी इसका अर्क बहुत लाभ पहुँचाता है। हीराबोल दन्तमञ्जन के उपयोग में भी बहुत आता है।

हीराबोल दीपन और वायुनाशक होता है। मुँह से लेकर गुदा पर्यन्त इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। इसलिए कुपचन- कब्जियत और पाण्डुरोग में इसका काफी उपयोग होता है।

हीरबोल रक्त में मिलकर रक्त के सफेद कणों को बढ़ाता है। इसलिए स्त्रियों के पाण्डुरोग में यह दिया जाता है। यह शरीर के अन्दर जाकर मूत्रेन्द्रिय, श्वासमार्ग, फुफ्फुस और श्लेष्मल त्वचा के द्वारा बाहर निकलता है। बाहर निकलते समय जिन २ भागों से यह बाहर निकलता है उन भागों की विनिमय क्रिया को सुधारता है और उनको उत्तेजना देता है। त्वचा के रास्ते से बाहर निकलते समय यह पसीना लाता है, मूत्रेन्द्रिय से बाहर निकलते समय यह मूत्र की तादाद को बढ़ाता है, फुफ्फुस और श्वासमार्ग से बाहर निकलते समय यह कफ को पतला करता है और उसकी दुर्गन्ध को नष्ट करता है। इससे श्लेष्मल त्वचा की कमजोरी दूर होती है, कफ का निस्सारण होता है और कफ में रहनेवाले जंतुओं का नाश होता है, इसलिए पुराने कफ रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। तरुण मनुष्यों की खाँसी में यह बहुत लाभदायक होता है। बच्चों की माता को होनेवाले दमे में भी यह बहुत उपयोगी होता है।

हीराबोल गर्भाशय का संकोचन करनेवाला उत्तेजक और आर्त्तव प्रवर्त्तक होता है। यह एलुवा और लोह भस्म के साथ अनार्तव रोग में बहुत दिया जाता है। कुमारी लड़कियों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी पड़ता है। गर्भाशय की शिथिलता, जीर्ण बस्तिशोथ और श्वेतप्रदर में भी इससे लाभ होता है।

रासायनिक विश्लेषण—हीराबोल में ६० प्रतिशत गोंद, २ प्रतिशत उड़नशील तेल और ३५ प्रतिशत राल रहती है।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा ५ से १० रत्ती तक की है। जो चूर्ण के रूप में अथवा गोली के रूप में देना चाहिए।

हीरादखन

नाम—हिन्दी—हीरादखन, खूनखराबा। अरबी—दम—उल—अखवेन। सिन्ध—बरथासुखी। फारसी—खूनसियावशान। लेटिन—Calamus Draco (केलेमस ड्रेको)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्णन—यह एक प्रकार का लाल रंग का गोंद होता है। यह गोंद किस वृक्ष का होता है इस सम्बन्ध में यूनानी हकीमों के अन्दर बड़ा मतभेद है। कोई-कोई इसे 'पतंग' वृक्ष का गोंद कहते हैं। मगर दूसरे हकीम इसको गलत मानते हैं। कुछ दाना हकीमों का कहना है कि यह ऐसे वृक्ष का गोंद है जो बड़ा होता है, जिसकी शाखाएँ टेढ़ी-मेढ़ी और जल्दी टूटनेवाली होती हैं। छाल पतली होती है, पत्ते गोल, कटी किनारों के और पतले होते हैं, फूल पीले और बीज काले होते हैं। इसके पिण्ड में चाकू मारने से लाल रङ्ग का तरल पदार्थ निकलता है जो जमकर गोंद की शकल में हो जाता है। यह गोंद लाल रंग का, साफ, चमकदार और तेज होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—हीरादखन में स्तम्भक गुण महत्त्वपूर्ण होता है इसलिए यह अतिसार और आमाशय के पुराने रोगों में दिया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। किसी-किसी के मत से दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क होता है। इसको पीने से भीतर से होनेवाला रक्तस्राव बन्द होता है। तलवार के जखम को यह भरता है, अतिसार को बन्द करता है, आंतों की मरोड़ में मुफीद है, आँखों की ज्योति बढ़ाता है और मेदे को ताकत देता है। संग्रहणी में भी यह लाभदायक है। इसका मञ्जन दाँत और मसूड़ों को शक्ति देता है। इसको बारीक पीस कर जखम पर भुरभुराने से जखम से बहता खून बन्द हो जाता है। इसके लगाने से आँख की सर्दी मिट जाती है।

मुजिर—इसकी अधिक मात्रा गुर्दे, फेफड़े और तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है।

दर्पनाशक—कतीरा। मात्रा—१ माशे से ४ माशे तक।

हेरम्ब

नाम—संस्कृत—हेरम्ब, खरपत्र, कंटकी, दंतधावन। हिन्दी—हेरम्ब, वज्रदन्ती। मराठी—दातुणी, हेरम्ब वृक्ष। गुजराती—वज्रदन्ती। लेटिन—Epicarpus Orientalis (एपिकार्पस ओरिएण्टेलिस)।

वर्णन—हेरम्ब का बड़ा वृक्ष होता है इसके पत्ते बेर के पत्ते के समान होते हैं। इसकी लकड़ी दतून करने के काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हेरम्ब कफ और वात को नष्ट करनेवाला होता है। इसकी जड़ वमनकारक होती है। इसकी लकड़ी का दतून दाँतों को मजबूत करता है।

हुलहुल

नाम—संस्कृत—आदित्यभक्ता, ब्रह्मसुवर्चला, कर्णस्फोटा, तिलपर्णी, सत्यनाम्नी, सुरसम्भवा, सूर्य्यलता, इत्यादि। हिन्दी—हुलहुल, कनफटिया। बंगला—हुरहुरिया। बम्बई—हुरहुरिया, कनफुटी, पिवला तिलवन। मराठी—हुरहुर। गुजराती—पीली तलवणी, कागड़ियु, गुड़िया करसण, बोरो। अरबी—बंटा कलान। उर्दू—हुलहुल। पंजाब—हुलहुल, बुगरा। लेटिन—Cleome Viscosa (क्लिओम विस्कोसा)।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। यह पौधा डेढ़ फुट से ढाई फुट तक ऊँचा होता है। यह पौधा नीचे से एक डंडी में सीधा बढ़कर ऊपर झूमर के समान अनेक शाखाओं से युक्त हो जाता है। इस सारे पौधे पर सफेद रङ्ग का चिकना रुँआ होता है। इसके पत्तों में एक प्रकार की हींग के समान उग्र और असह्य गन्ध आती है। इस पौधे के नीचे के भाग में पंचपर्णी और ऊपर के भाग में तिपानी पत्ते आते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। इसकी फलियाँ आधे से लेकर साढ़े तीन इञ्च तक लम्बी होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से हुलहुल खारी, कड़वी, शीतल, अग्निवर्द्धक, मूत्रल, मृदु विरेचक, कृमिनाशक, कफ को दूर करनेवाली, पित्त को बढ़ानेवाली और रूक्ष होती है। यह अर्बुद और सूजन को घटाती है। चर्मरोग, खुजली, व्रण, कुष्ठ, मलेरिया, ज्वर, अपचन की वजह होनेवाले ज्वर, रक्तरोग और पेशाब-सम्बन्धी रोगों में यह उपयोगी होती है। यह खून को बढ़ाती है तथा कर्णरोग और कफ रोगों को दूर करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पौधा उग्र और असह्य गन्धवाला होता है। इसके पत्ते पाचन क्रिया को दुरुस्त करनेवाले और आँतों की खराबी को मिटानेवाले होते हैं। इनका रस कर्णशूल, मलेरिया ज्वर, बवासीर और कटिवात में लाभ पहुँचाता है तथा त्वचा पर लगाने से त्वचा को उत्तेजित करता है। इसके बीज कृमिनाशक और विरेचक होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हुलहुल में स्वेदजनक, उत्तेजक, कोष्ठवायु को दूर करनेवाला और कृमिनाशक इतने धर्म रहते हैं। इसके बीजों और पत्तों की क्रिया राई के समान होती है। इसके पत्ते सफेद तिलवन के पत्तों की अपेक्षा स्पष्ट रूप से अधिक दाहजनक होते हैं। त्वचा पर इनका लेप करने से त्वचा फौरन लाल हो जाती है और वहाँ छाला उठ जाता है। इसलिए छाला उठाने के लिए और त्वचा को लाल करने के लिए इसके पत्ते अथवा पंचाङ्ग को पीसकर लगाया जाता है। अन्तर्शोथ को कम करने के लिए इसके पत्तों का लेप राई के लेप की अपेक्षा विशेष उपयोगी होता है। इसके पत्तों के रस को तेल में मिलाकर कान में टपकाने से बहिरापन और पूतिव्रण में लाभ होता है। ज्वर, दस्त, आम और सिर दर्द में इसके बीजों का उपयोग किया जाता है।

प्लेग की बीमारी और हुलहुल—जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि यह वनस्पति प्लेग की बीमारी के समान भयंकर बीमारा में अकसीर साबित हुई है। इस सारे पौधे के पंचाङ्ग को सिलपर महीन पीसकर एक-एक रुपये के आकार की दो टिकड़ियाँ बना लेनी चाहिए। फिर जिस बाजू में प्लेग की गठान निकली हो उस बाजू की धोरी नाड़ी या व्हेन नस पर एक टिकड़ी और उसकी दूसरी बाजू पर दूसरी टिकड़ी रखकर उस पर साफ कपड़े का पट्टा खींच कर बांध देना चाहिए। दो-तीन घण्टे के पश्चात् उस पट्टे को खोलने से उस स्थान पर एक इञ्च के आकार का फोड़ा निकल आता है उस फोड़े को सूई अथवा किसी दूसरे साफ औजार से फोड़ देना चाहिए। जिससे सब जहरी पानी निकल जावेगा। उसके पश्चात् उस पर घी या कोई ठण्डा मलहम लगा देना चाहिये। इस फोड़े के फूटने पर प्लेग की गाँठ बैठ जाती है और सौ में से पिचानवे मनुष्य काल के चंगुल से बच जाते हैं।

इकतरा, तिजारी, चौथिया वगैरह मलेरिया ज्वरों में भी इसके पत्तों को पीसकर उनकी लुगदी बनाकर दाहिने हाथ की कोनी के पिछले भाग में रखकर उसपर एक मिट्टी का टोकरी रख कर पट्टा चढ़ा देना चाहिए इसको चार-पाँच घण्टे में छोड़ने पर फोला उठ आवेगा उस फोले को फोड़कर उसका पानी निकाल देने पर बुखार का आना रुक जाता है।

इसके पत्तों का रस कान में टपकाने से कान का शूल बन्द हो जाता है। इसके बीज कृमिनाशक और पेट का आफरा दूर करनेवाले होते हैं। ये ज्वर और अतिसार रोग में दिये जाते हैं।

इण्डोचायना में इसकी जड़ उत्तेजक और रक्तातिसार-नाशक मानी जाती है। इसके सारे पौधे को कुचल कर उसका लेप त्वचा पर फोड़ा उठाने के लिए किया जाता है।

लारियूनियन में यह वनस्पति संकोचक और आक्षेप-निवारक मानी जाती है।

सीलोन में इसकी जड़ और इसके बीज हृदय को उत्तेजना देनेवाले माने जाते हैं तथा सर्पविष की चिकित्सा में इनको पिलाया जाता है।

उपयोग—बाइंटे—इसके पत्तों का क्वाथ छः तोले की मात्रा में दिन में दो बार देने से बाइंटे मिलते हैं।

पानीझरा—इसके पत्तों का काढ़ा छः तोले की मात्रा में दिन में दो बार पिलाने से पानीझरा या पैराटाइफाइड ज्वर छूटता है।

आँतों के कीड़े—इसके बीजों के चूर्ण में शक्कर मिलाकर खिलाने से आँतों के कीड़े मर जाते हैं।

कान की सूजन—कान के भीतर की सूजन और पीड़ा मिटाने के लिए इसके पत्तों को कुचल कर, बिना पानी डाले हुए, उनका स्वरस निकाल कर टपकाना चाहिये।

फोड़े—फोड़ों के ऊपर इसके पत्तों को सिरका या गर्म जल या नीम्बू के रस में पीसकर लगाने से फोड़ों की सूजन बिखर जाती है।

हलका ज्वर—इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से मन्द ज्वर छूट जाता है।

श्वासनलिका के रोग—इसके पत्तों का स्वरस पिलाने से श्वासनलिका के रोग मिटते हैं।

उपदंश—हुलहुल के पत्तों को ठण्डाई की तरह घोट कर छानकर पीने से और उसके बचे हुए बुगदर को बाँधने से उपदंश में लाभ होता है।

शीत ज्वर—हुलहुल के पत्तों और काली मिरच को बराबर लेकर पीसकर काली मिरच के बराबर गोलियाँ बना लेनी चाहिए। इन गोलियों में से एक-एक गोली तीन दिन तक देने से शीत ज्वर छूट जाता है।

भूतज्वर—हुलहुल की जड़ को कान में बाँधने से भूतज्वर छूट जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गलगण्ड—हुलहुल के पत्ते और लहसन की गुली को पीसकर टिकिया बनाकर बाँधने से गलगण्ड फूट जाता है और बह कर के साफ हो जाता है। मगर इससे वेदना बहुत होती है।

विष विकार—इसके १७ माशे बीजों को पीसकर खिलाने से सब प्रकार के विष उतरते हैं।

कर्णशूल—हुलहुल के रस में सेंधानमक, शहद और कड़वा तेल मिलाकर कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है।

बवासीर—इसके बीजों का चूर्ण ३ माशे लेकर उनमें ३ माशे शक्कर मिलाकर प्रतिदिन खाने से पन्द्रह बीस दिन में वायु की वजह से होनेवाला बवासीर नष्ट हो जाता है मगर पथ्य में घी, खिचड़ी और मट्ठे का ही उपयोग करना चाहिए।

कृमिरोग—इसके बीजों का चूर्ण बालकों को तीन रत्ती से दस रत्ती तक और बड़े आदमियों को सोलह से बत्तीस रत्ती तक दिन में दो बार तीन दिन तक देने से और पश्चात् अरण्डी के तेल का जुलाब देने से आँतों में पड़नेवाले गोलकृमि (Round worm) निकल जाते हैं और शूल तथा आफरे का नाश होता है।

कर्णस्राव—तिल का तेल एक भाग और हुलहुल का रस चार भाग मिलाकर हलकी आंच पर सिद्ध कर लेना चाहिए। कान को पिचकारी से धोकर इस तेल को टपकाने से कान से पीब का बहना बन्द हो जाता है और कुछ दिनों में बहरापन भी मिट जाता है।

आधाशीशी—हुलहुल के पत्तों के रस में हुलहुल के बीजों को खरल करके कपाल पर दो-तीन दिन तक लेप करने से आधाशीशी की वेदना मंत्रशक्ति की तरह बन्द हो जाती है।

मात्रा—हुलहुल के बीजों की साधारण मात्रा डेढ़ माशे से तीन माशे तक होती है।

बनावटें—संखिया अथवा हड़ताल की भस्म—अच्छी प्रकार से शुद्ध किया हुआ संखिया या हड़ताल डेढ़ तोला लेकर उसे कपड़मिट्टी की हुई मिट्टी की हड़िया में रख देना चाहिए। फिर एक सेर आक का दूध और एक सेर हुलहुल का रस दोनों को मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर मावे के समान घनसत्त्व बना लेना चाहिए। इस घन-सत्त्व में से दस तोला लेकर उस संखिया या हड़ताल पर रखकर उस हड़िया पर ढकनी लगाकर उसकी संधियों को कपड़मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। फिर इस हंड़िया को गजपुट में रखकर उस गजपुट में उपले कण्डे भरकर आग लगा देना चाहिए। स्वांगशीतल होने पर उस हंड़िया को निकालकर उसमें से हड़ताल या सोमल की डली जो भस्मरूप में मिलेगी निकालकर खरल कर शीशी में भर लेना चाहिए।

इस भस्म को यदि संखिया की हो तो चौथाई रत्ती की मात्रा में और हड़ताल की हो तो आधी रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से मलेरिया ज्वर, त्रिदोष, मन्दाग्नि, उपदंश, श्वास, खाँसी और वात रोगों में बहुत लाभ होता है। यह भस्म बहुत गरम होता है इसलिए इसको देते ही इस पर दूध पिलाना चाहिए और पथ्य में सिर्फ दूध और भात का ही आहार लेना चाहिए।

हीरा

नाम—संस्कृत—हीरक, वज्र, दृढगर्भक, रत्नमुख्य, दधीच्यस्थि। हिन्दी—हीरा। बंगला—हिरे। मराठी—हीरा। गुजराती—हीरो। तेलगू—वज्र। फारसी—इल्माश। अंग्रेजी—Diamond। लेटिन—Pure carbon Adamas (प्यारे कार्बन आडम्स)।

वर्णन—हीरा नवरत्नों में से एक सर्वप्रधान रत्न होता है। इसका रंग सफेद होता है। संसार के सभी देशों में आदिम काल से एक रत्न की दृष्टि से हीरे की बहुत भारी प्रतिष्ठा रही है। यह वस्तु आकार में जितनी बड़ी तथा तेज और चमक में जितनी प्रभापूर्ण होगी उसका मूल्य भी उतना ही होगा। संसार में कुछ हीरे तो इतने बड़े और इतने प्रभापूर्ण हैं कि उनके पीछे एक लम्बा इतिहास बन गया है। इनमें से कोहेनूर हीरा बहुत प्रसिद्ध है।

आयुर्वेद के मत से हीरे की चार जातियाँ होती हैं। १ ब्राह्मण, २ क्षत्रिय, ३ वैश्य और ४ शूद्र। ब्राह्मण जाति का हीरा जो एकदम उज्ज्वल सफेदा रङ्ग का होता है वह रसायन कार्य में उत्तम होता है। क्षत्रिय जाति का हीरा जिसमें सफेद वर्ण होते हुए भी किंचित् लाल झाँई होती है बुढ़ापा और व्याधि को नष्ट करनेवाला होता है। वैश्य जाति का हीरा जिसमें कुछ पीली झाँई होती है धनदायक और शरीर को दृढ़ करनेवाला होता है और शूद्र जाति का हीरा जिसमें किंचित् काली झाँई होती है व्याधिनाशक और अवस्था-स्थापक होता है। इसी प्रकार पुरुष,

000007
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

GOODWILL INDI

CREDIT **CASH BOOK for ....**

Receipt & Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection